हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

भाकृअनुप
ICAR

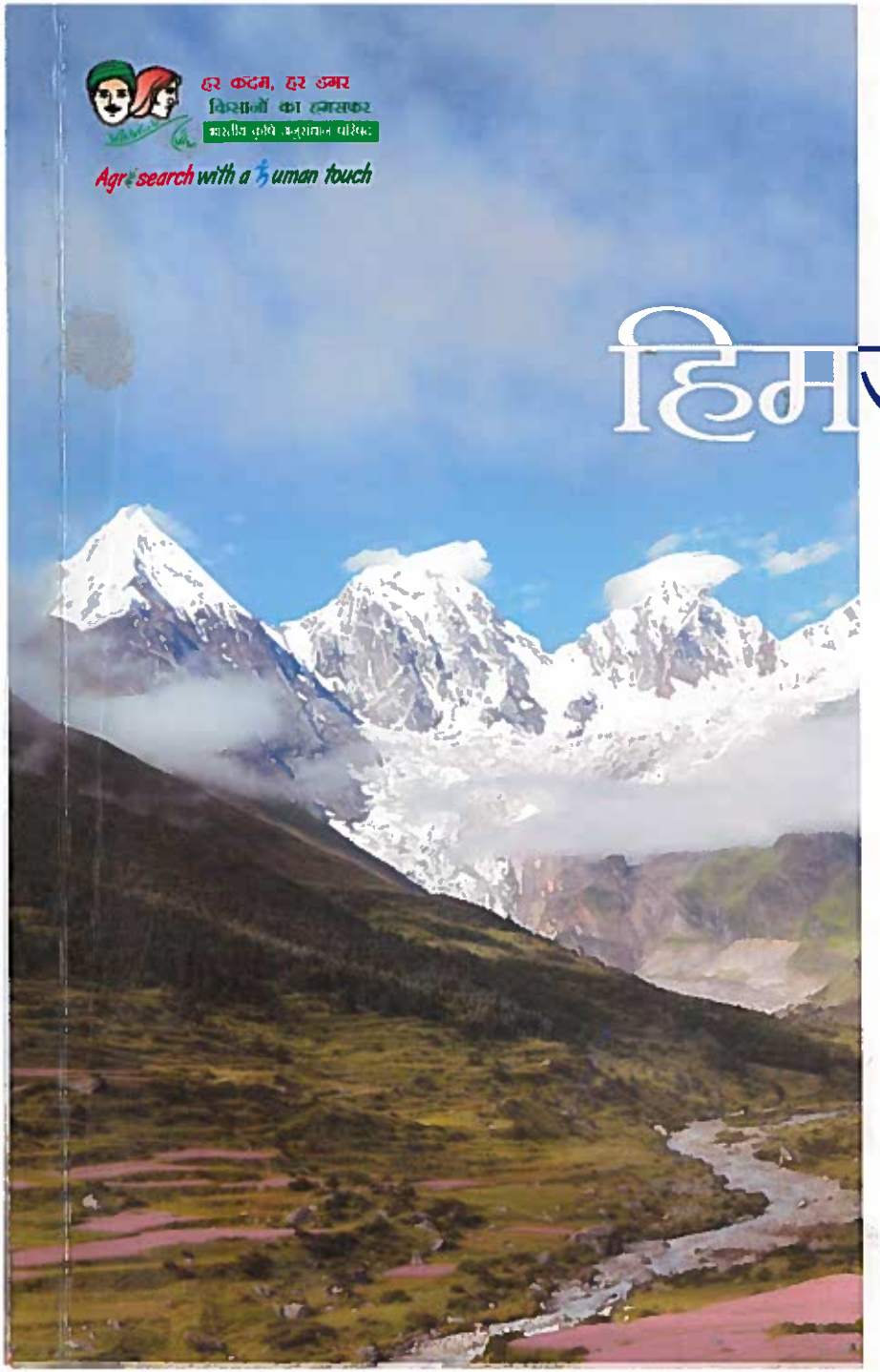

हिमज्योति

2012

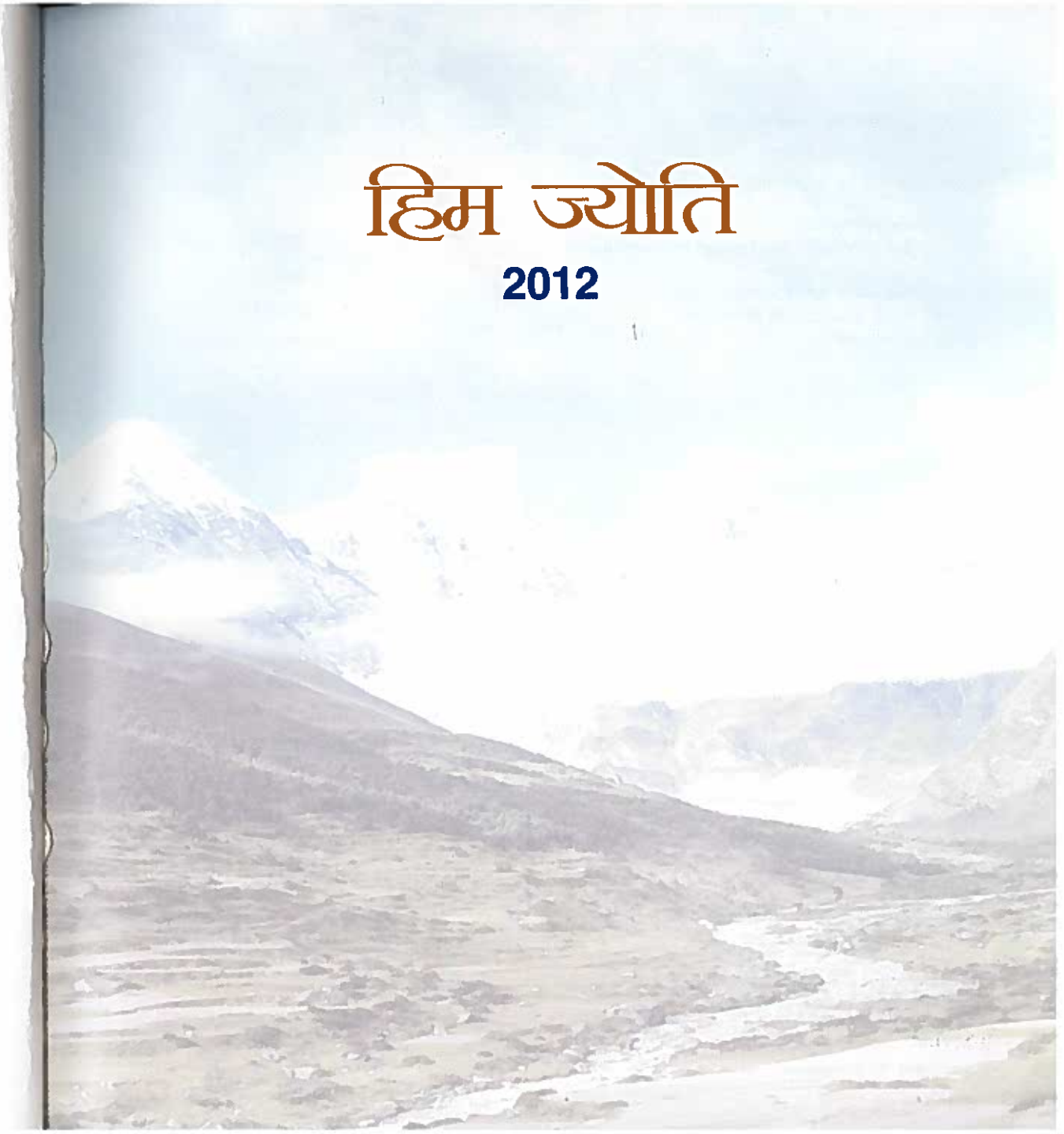
हिम ज्योति
2012

सम्पादन

डा0 आर.एस. पतियाल
डा0 एन.एन. पाण्डेय
डा0 प्रेम कुमार
श्री अमित कुमार जोशी

अनुवाद

श्री अमित कुमार जोशी

आवरण छायांकन एवं चित्रांकन

डा0 आर.एस. पतियाल

प्रकाशक

डा0 पी.सी. महंता
निदेशक

डॉ एस. अय्यप्पन
सचिव एवं महानिदेशक
Dr S. AYYAPPAN
Secretary & Director General

भारत सरकार
कृषि अनुसंधान और शिक्षा विभाग एवं
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली 110 001

Government of India
Department of Agricultural Research & Education
and
Indian Council of Agricultural Research
Ministry of Agriculture, Krishi Bhavan
New Delhi 110 001

संदेश

प्राचीन काल से ही हिन्दी हमारे देश की सभ्यता व संस्कृति की परिचायक रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद सरकारी कामकाज में राजभाषा हिन्दी के इस्तेमाल में बढ़ोतरी सुनिश्चित कराने के लिए कटिबद्ध हैं। नवीनतम अनुसंधानों के परिणामों को किसानों एवं जनसाधारण तक हिन्दी तथा किसानों की समझ में आने वाली भाषा में पहुंचाना परिषद का प्रमुख ध्येय है। इस उपलब्धि को हासिल करने हेतु परिषद एवं इसके देशभर में फैले सभी अनुसंधान संस्थान अपने–अपने स्तर पर प्रयासरत हैं। आज विज्ञान सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी को और अधिक समक्ष बनाना होगा ताकि वैज्ञानिक उपलब्धियों को किसानों तक आसानी से उनकी समझ में आने वाली भाषा में पहुंचाया जा सके तथा दिन प्रति दिन किए जा रहे नये–नये अनुसंधानों का लाभ किसानों को सरलता से मिल सके।

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल द्वारा राजभाषा हिन्दी में "हिम ज्योति" पत्रिका का प्रकाशन निसन्देह राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार में उपयोगी सिद्ध होगा।

मैं "हिम ज्योति" के प्रकाशन के लिए संस्थान के निदेशक तथा उनके सहयोगियों को हार्दिक बधाई देता हूं। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि 'हिम ज्योति' पत्रिका संस्थान में किए जा रहे अनुसंधानों को किसानों तक हिन्दी में पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

पत्रिका की सफलता के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

डा. (श्रीमती) बि. मीनाकुमारी
उप महानिदेशक (मात्स्यिकी)
Dr. (Ms) B. Meenakumari
Deputy Director General (Fy.)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन-II, पूसा, नई दिल्ली 110 001
Indian Council of Agricultural Research
Krishi Anusandhan Bhawan-II, Pusa,
New Delhi 110 001

संदेश

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल अपने रजत जयन्ती वर्ष पर राजभाषा पत्रिका "हिम ज्योति" को प्रकाशित कर रहा है।

शीतजल मत्स्य पालन की दिशा में शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आधुनिक मत्स्य पालन तकनीकियों एंव अनुसंधानात्मक परिणामों को मत्स्य पालकों तक पहुँचाने के लिए लेखकों, रचनाकारों को हिंदी भाषा का प्रयोग आवश्यक है। निदेशालय द्वारा इस दिशा में किया जा रहा प्रयास सराहनीय है। इसका लाभ अवश्य ही हमारे मत्स्य पालक किसानों को मिलेगा ऐसा मैं विश्वास करती हूँ।

निदेशालय के इस महत्वपूर्ण हिन्दी पत्रिका – "हिम ज्योति" के प्रकाशन के लिए मैं निदेशक एवं सम्पादन मण्डल को बधाई एंव धन्यवाद देती हूँ।

मीनाकुमारी जी

दिनांक 22 अक्तूबर, 2012

(बी. मीनाकुमारी)

डा. पी.सी. महंता
निदेशक
Dr. P.C. Mahanta
Director

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद)
अनुसंधान भवन, भीमताल (नैनीताल) उत्तराखण्ड
Directorate of Coldwater Fisheries Research
(Indian Council of Agricultural Research)
Anusandhan Bhavan, Bhimtal, Nainital
Uttarakhand

निदेशक की कलम से !

राजभाषा संकल्प 1968 के अनुपालन के क्रम में राजभाषा विभाग भारत सरकार द्वारा सभी सरकारी विभागों को कुछ लक्ष्य निधार्रित किऐ गये हैं। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के अभियान में अपना योगदान सुनिश्चित करने के लिए शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय भीमताल ने विगत वर्षों से अपनी राजभाषा पत्रिका– "हिम ज्योति" का प्रकाशन आरम्भ किया है, पत्रिका का यह नवीन अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस पत्रिका के माध्यम से अधिक से अधिक वैज्ञानिकों के शोध पत्रों को सरल हिन्दी में प्रकाशित करना, वैज्ञानिकों को आम सरल हिन्दी भाषा में अपने शोध पत्रों की रचना हेतु प्रेरित कर आमजन को लाभान्वित करना प्रमुख उद्देश्य रहा है। इसमें विभिन्न प्रकार वैज्ञानिक लेखें, कहानियों, कविताओं व सम–सामयिक लेखों को शामिल किया गया है। पत्रिका के प्रकाशन हेतु राजभाषा समिति, संम्पादक और रचनाकार बधाई के पात्र हैं। मै आशा करता हूँ "हिम ज्योति" जैसे सार्थक प्रयासों के माध्यम से हमारे अर्न्तमन में राजभाषा में अधिक से अधिक कार्य करने की प्रेरणा जाग्रत होगी जो उत्तरोत्तर राजभाषा हिन्दी के विकास के लिए अति आवश्यक है।

शुभकामनाओं सहित ।

दिनांक 22 अक्तूबर, 2012

(पी.सी. महंता)

प्राक्कथन

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय के राजभाषा अनुभाग द्वारा पिछले तीन वर्षों से हिम ज्योति का सफलता पूर्वक प्रकाशन किया जा रहा है और इसी क्रम में पत्रिका का नवीन सस्करण आपके समक्ष प्रस्तुत है। राजभाषा को पूरा सम्मान मिले इसके लिए राजभाषा अनुभाग एवं उससे जुड़े प्रत्येक व्यक्ति के अलावा निदेशालय में कार्यरत प्रत्येक कर्मचारी का भी कर्तव्य बनता है कि वह इसके कार्यान्वयन के लिए समूचित ढंग से दिशा–निर्देशों का पालन करें। लोग हिन्दी के लिए कार्य करना तो बहुत चाहते है पर कहीं न कहीं हिन्दी में कामकाज करने को हीनता की प्रवृति अथवा पिछड़ेपन का द्योतक इन्हें हतोत्सहित करता है। भारतीय विज्ञान और प्रौधोगिकी के वर्तमान परिवेश में अंग्रेजी के अधिपत्य और आधुनिक वैज्ञानिक जटिलताओं को देखते हुए हिन्दी मे वैज्ञानिक लेखन की बात करना भी एक बार को अव्यावहारिक सा लगता है किंतु यदि हमें अपनी अनुसंधान उपलब्धियों को जनमानस तक पहुँचाना है तो हमें इस अव्यावहारिक दिखने वाले कार्य को व्यवहारिक बनाना ही होगा। भारतवर्ष एक कृषक व हिन्दी प्रधान देश है, शोध परिणामों एवं उसके लाभ को जन–जन तक पहुँचाने में हिन्दी एक श्रेष्ठ एवं सरल माध्यम है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के अधिकांश संस्थानों में इस तरह की हिन्दी पत्रिका प्रकाशन की श्रंखला, एक कड़ी के रूप में उत्तरोत्तर अपना स्थान बढ़ाती जा रही है।

चूकिं हमारा संस्थान 'क' क्षेत्र में स्थित है अतः हमारी अनुसंधान उपलब्धियों, मत्स्य पालन की नवीन तकनीकियों को विभिन्न उपयोगकर्ता, मत्स्य पालकों को नियमित रूप से सरल भाषा में पहुँचाने की आवश्यकता को हमारे दूरदर्शी निदशेक महोदय ने महसूस किया है। जिसके परिणामस्वरूप इस पत्रिका का प्रकाशन सम्भव को सका है।

इन्हीं शब्दों के साथ "हिम ज्योति" का यह संस्करण आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस पत्रिका को भविष्य में और अधिक रूचिकर बनाने में हमें आपके सहयोग, बहुमूल्य सुझावों की प्रतीक्षा रहेगी। इसी आशा और विश्वास के साथ।

सम्पादक मण्डल

विषय सूची

क्र.स.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
1	भारत में शीतजल मात्स्यिकी का विकास	पी.सी. महन्ता एवं एन.एन. पाण्डेय	1
2	शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय में राजभाषा हिन्दी के बढ़ते चरण	अमित कुमार जोशी	4
3	उत्तराखण्ड के तराई भाबर के तालाबों में मछली पालनः गांवों की खुशहाली का एक उत्तम साधन	सुरेश चन्द्रा एवं आर.एस. पतियाल	8
4	सुनहरी महाशीर का प्रजनन एवं हैचरी प्रबन्धन	देबाजीत शर्मा, आर.एस. हालदर, एम.एस. अख्तर एवं पी.सी. महन्ता	21
5	पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य आखेट पर्यटन की सम्भावनायें	आर.एस. पतियाल, सुरेश चन्द्रा, प्रेम कुमार, ए. बराट एवं एन.एन. पाण्डेय	30
6	रंग बिरंगी, सजावटी मछलियां	एस.के. गुप्ता, एस.के. श्रीवास्तव एस. चन्द्रा एवं देवाजीत शर्मा	35
7	स्वायत्तशासी निकायों में दोहरी लेखा प्रणाली : एक दृष्यावलोकन	भूपेश चन्द्र पाण्डेय एवं गणेश दत्त अमोला	39
8	तालाब के लिए भूमि का चुनाव	ए.के. सिंह एवं आर. एस. पतियाल	42
9	सजीव मत्स्य आहार	पी. शाहू, आर.एस. पतियाल, ए. बराट एवं विजय कुमार	53
10	पर्वतीय क्षेत्र की प्रमुख मत्स्य जैव विविधता एवं अभ्यागत प्रजातियों का समावेश	ए.के. सिंह	56
11	शीतजल मछलियों की प्रमुख रोग–लक्षण एवं उपचार	सुरेश चन्द्रा, अमित पाण्डे एवं सुमन्त कुमार मलिक	62
12	बदलता पर्यावरण और जीव–जन्तुओं पर	प्रो. जी.सी. पाण्डेय	73

क्र.स.	शीर्षक	लेखक	पृष्ठ
15	मछली पकड़ने के उपकरण	एन.एन पाण्डेय, आर.एस पतियाल एवं प्रेम कुमार	85
16	'सजीव मत्स्य जीन बैंक' मत्स्य पालन एवं मत्स्य संरक्षण के बीच कड़ी की भूमिका में	आर.एस. पतियाल एवं पी.सी. महन्ता	88
17	पहाड़ों पर मछली पालन को नई दिशा प्रदान करता छीड़पानी प्रायोगिक मत्स्य प्रक्षेत्र, चम्पावत	रवीन्द्र कुमार एवं हन्सा दत्त	94
18	हिमालय क्षेत्र में सुनहरी महाशीर का आणविक एंव शारीरिक विभिन्नताओं का अध्ययन	ज्योति सती एवं रोहित कुमार	97
19	गुणों की खान है–नमक	डी. डी. ओझा	98
20	बहुरत्न वसुन्धरा	भोलादत्त मौनी	102
21	असेला बर्फानी ट्राउट (साइजोथोरेक्स रिचर्डसोनी), जैव वैज्ञानिक संरचना एवं पालन की सम्भावनायें	कृपाल दत्त जोशी	103
22	"मेरा एक सवाल"	हयात सिंह चौहान	107

भारत में शीतजल मात्स्यिकी का विकास

पी.सी. महन्ता एवं एन.एन. पान्डेय

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

हिमालय तथा प्रायद्वीपीय पहाड़ी क्षेत्रों सहित देश के ऊपरी (ऊँचाई वाले) क्षेत्रों का पर्यावरण एवं भौगोलिक रूप से पूरी तरह भिन्न है। पहाड़ी क्षेत्र विशाल व विविध जल संसाधनों जैसे–नदियों, झरनों, झीलों, जलाशयों तथा ऊँचाई से गिरने वाले जल प्रपातों से भरपूर हैं। ये संसाधन भोजन, आखेट एवं सजावटी मत्स्य प्रजातियों की सतत् संख्या को नियंन्त्रित करते हैं।

पर्वतीय क्षेत्रों में निवास करने वाली जनता के लिये ये संसाधन मत्स्य उत्पादन के रूप में जीविकोपर्जन का उत्तम साधन है। पिछले पाँच दशको में जनसंख्या वृद्धि एवं अर्थिक उतार चढ़ाव मे न केवल मैदानी वरन पर्वतीय क्षेत्रों को भी प्रभावित किया है। इन परिस्थितियों में शीतजल मात्स्यिकी की भूमिका खाद्य निर्भरता एवं जीविका पालन हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पहाड़ी क्षेत्र के भिन्न जलीय पर्यावरण में मत्स्य प्रजातियों की विविधता है। शीतजल संसाधनों में लगभग 278 मत्स्य प्रजातियों का पता लगाया गया है। इन मत्स्य प्रजातियों का वितरण मुख्यतः जल का तापक्रम एवं भोजन की उपलब्धता पर आधारित है। पहाड़ी क्षेत्र में पायी जाने वाली सुनहरी माहशीर मछली मत्स्य आखेट के लिये विश्व प्रसिद्ध है जो कि एक प्रवसन व्यवहार की मत्स्य प्रजाति है तथा प्रजनन एवं भोजन प्राप्ति हेतु नदियों एवं धाराओं में एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये मौसम के अनुरूप स्थान परिवर्तन करती है। तेज प्रवाह वाली नदियों के मुहाने वाले क्षेत्र में रिहोफिलिक प्रजाति की कैट फिश निमाचिलस ग्रेसिलिस, एन स्ओलिकी तथा ग्लैस्टोस्टरमन रेटीकूलेटम तथा बड़े नदी क्षेत्र में डिप्टीकस मैक्यूलेटस एवं निमाचिलस प्रजातियों का आवास होता है। इनमें एक ओर ऊपरी क्षेत्र में स्नोट्राउट मछलियों की रिहोफिलिक प्रजाति की साइजोथोराक्थीज इसोसीनम, एस प्रोजेक्टस साइजोथोरैक्स रिचार्डसोनी एवं साइजोगाप्सीज स्ओलिक जिनमें साइजोथोरैक्स लौंगिपिनस, एस प्लौनिफ्रांस व एस माइक्रोपोगोन की बहुलता होती है का आवास होता है तो दूसरी ओर निम्न क्षेत्रों में गारा गोटाइला, क्रोसोचिलस डिप्लोचिलस, लैबियो डेरो एवं एल डायोचिलस का। यद्यपि विसर्पी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में ठण्डी तथा यरीथरमल प्रजातियों जैसे–बारील्स, टौर, कैटफिश, होमालोप्टीरिड मछली होमालोप्टेरा

भारत में अन्तर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन में काफी प्रगति हुई है जिसमें शीतजल मात्स्यिकी का योगदान लगभग 3–4 प्रतिशत है। यद्यपि इसकी क्षमता को देखते हुए इन क्षेत्रों में मात्स्यिकी विकास की व्यापक संभावनायें हैं तथा भविष्य में इसे वैज्ञानिक जानकारी एवं संसाधनों के बेहतर प्रबन्धन से 8–10 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

जटिल मौसम व कम जलीय तापक्रम के रहते हुए, पर्वतीय क्षेत्रों में मछलियों की बढ़वार धीमीगति से होती है तथा मत्स्य उत्पादन का स्तर कम है। शीतजल शब्द का सम्बन्ध सालमोनिडी समुह की मछलियों से है। इस समुह की ट्राउट मछली के प्रवास, प्रजनन एवं रहने के लिये 20 डिग्री तापक्रम तक उपयुक्त पाया गया है। इसी आधार पर ऐसे जल संसाधन जिनका जलीय तापक्रम वर्ष भर की अवधि में अधिकतम 20 डिग्री रहता है, शीतजलीय श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है।

प्रारम्भ में शीतजल मात्स्यिकी का उत्पादन प्राकृतिक स्रोतों से आखेटिक मछलियों पर आधारित रहा है या फिर इन क्षेत्रों की पहचान मत्स्य आखेट के लिये की जाती रही है। परन्तु अब वैज्ञानिक पहल के बाद परिदृश्य बदलने लगा है। बहुत से प्रगतिशील किसानों ने छोटे–छोटे तालाबों में मत्स्य पालन शुरू कर काफी अच्छा उत्पादन हासिल किया है। मध्यम ऊँचाई के पहाड़ी क्षेत्रों में कार्प मछली पालन तथा अधिक ऊँचाई के ठण्डे एवं निरन्तर बहते पानी में ट्राउट मछली पालन शीतजल मत्स्य संवर्धन कें क्षेत्र में नया आयाम है।

शीतजल मात्स्यिकी के मुख्य बिन्दु

देश के पहाड़ी क्षेत्रों में प्रमुख व्यवसाय कषि आधारित गतिविधियां है। पहाड़ी क्षेत्रों में भूमि राष्ट्रीय औसत की तुलना में कम है। इन क्षेत्रों के किसान मिश्रित तरह की खेती करते हैं, अतः मछली आय का एक अतिरिक्त स्रोत हो सकती है। इसके लिये किसान कषि के साथ जल संरक्षण व मछली पालन कर सकते हैं। स्थानीय तौर पर उत्पादित मछली पशु प्रोटीन का सबसे अच्छा विकल्प माना जाता है। इसके अलावा पहाड़ी क्षेत्रों में मत्स्य पालन जल संरक्षण व जैव विविधता के संरक्षण को भी प्रोत्साहित करता है।

पहाड़ी क्षेत्रों के अधिकतम राज्यों में पारंपरिक मत्स्य खेती नियमित तौर पर नहीं की जाती है। अतः इन क्षेत्रों में मत्स्य पालन का विकास वहां के गरीब लोगों के लिये रोजगार का एक स्रोत प्रदान कर सकता है। पहाड़ी राज्यों के विभिन्न भागों में कई उपयुक्त जमीन उपलब्ध है जिसे जलीय कषिके माध्यम से मत्स्य उत्पादन के लिये उपयोग किया जा सकता है। यह उपयुक्त जगह नदियों, नालों के किनारे स्थित है। इन क्षेत्रों की पारिस्थिति के अनुसार उपयुक्त जमीन की पहचान कर उन्हें तीन आयामी मछली पालन के लिये उपयोग किया जाना चाहिए।

ट्राउट पालन–: ट्राउट की खेती हिमालय और कुछ प्रायद्वीपीय क्षेत्रों, जहां उपयुक्त गुणों वाला पानी

पहाड़ी राज्य जैसे– सिक्किम, उत्तराखण्ड तथा अरूणाचल प्रदेश में भी ट्राउट पालन का विकास हो रहा है।

पहाड़ी क्षेत्रों के कई किसानो मुख्यतः हिमांचल प्रदेश के किसानों ने ट्राउट पालन को अपनाया है जो अब उनके जीवन स्तर को सुधारने में मदद कर रहा है। उच्च आर्थिक लाभ के लिये पहाड़ी राज्यों में मूल्य संवर्धन ट्राउट प्रंसंस्करण इकाईयों की स्थापना के लिये प्रयास किये जा रहे हैं। यह पर्वतीय क्षेत्रों के लोगों को रोजगार देने में सहायक सिद्ध होगा।

मध्य ऊँचाई वाले क्षेत्रों में कार्प पालन

सरल तकनीक, कम निवेश व आवश्यकतायें तथा उपलब्ध संसाधनों के कारण विदेशी कार्प मछलियों का पालन काफी लोकप्रिय होता जा रहा है। इन विदेशी मछलियों का पालन एकल मछली पालन से लेकर ग्रास, सिल्वर व कामन कार्प के मिश्रित पालन के रूप में हो रहा है। कार्प पालन को डेयरी, मुर्गी पालन, बागवानी व कषि के साथ समन्वित कर और अधिक आमदनी परक बनाया जा सकता है।

सजावटी मछलियों के व्यापार का कार्य क्षेत्र

सजावटी मछलियों का संग्रह, संवर्धन व विपणन इस क्षेत्र का संभावित उपक्रम है। सजावटी मछलियों का वैश्विक व्यापार का अनुमान 1600 करोड़ रूपये है। शीतजल में कुछ बहुत सुन्दर रंगीन मछलियां पायी जाती हैं इनमें से कुछ पहले से ही अन्य देशो में सजावटी मछलियों के रूप में पहचानी जाती हैं तथा अन्य मछलियां भी इस रूप में उपयुक्त हैं। उत्तरी पूर्वी क्षेत्र सजावटी मछलियों के भंडार के रूप में जाना जाता है। कुल 255 प्रजातियों में से लगभग 187 (74%) सजावटी मछलियों के अर्न्तगत आती हैं। ग्रामीण इलाको में सजावटी मछली के व्यापार को छोटे पैमाने पर स्वरोजगार के रूप में अपनाया जा सकता है।

मत्स्य पालन आधारित पर्यटन

मत्स्य पालन आधारित पर्यटन रोजगार सष्जन के लिये संभावित क्षेत्र के रूप में उभर रहा है। वर्तमान में कुल्लू मनाली (हिमांलच प्रदेश) और सिक्किम के किसानों ने राजमार्गो व पर्यटक स्थानों में स्थित अपने ट्राउट फार्म को खेल मत्स्य उद्यम के रूप में विकसित किया है। इन्होनें अपने फार्मो को मत्स्य फार्मो के अलावा बहुआयामी मत्स्य फार्मो में बदल दिया है, इसमें सौन्दर्यीकरण, रेस्टोरेन्ट की सुबिधा, नौकायन, आदि को भी विकसित किया है। पर्वतीय क्षेत्रों में इस तरह के मत्स्य आधारित पर्यटक ईकाइयों के विकास की व्यापक संभावना है जो कि स्थानीय जनता के लिये रोजगार प्राप्ति एवं आमदनी का अच्छा साधन है।

नयी पहल

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय में राजभाषा हिन्दी के बढ़ते चरण

अमित कुमार जोशी

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, भीमताल भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद नई दिल्ली के अधीनस्थ उत्तर–पश्चिमी हिमालय क्षेत्र मत्स्य अनुसंधान एवं विकास के लिए कार्यरत है। यह देश में एक मात्र ऐसी राष्ट्रीय सुविधा है जहां पर शीतजल की प्रमुख देशी एवं विदेशी मत्स्य प्रजातियों के पालन पोषण तथा प्रग्रहण पर अनुसंधान सम्बन्धी अन्वेषण कार्य किए जाते हैं। यह निदेशालय भारत सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा वगीकृत "क" क्षेत्र के अर्न्तगत आता है। निदेशालय में राजभाषा हिन्दी को प्रोत्साहित करने, अपने दिन प्रतिदिन के कार्यालय कार्यों को हिन्दी में सम्पादित करने तथा सुचारू संचालन के उददेश्य से राजभाषा कार्यान्वयन समिति का गठन किया गया है। इस समिति की प्रत्येक तिमाही की समाप्ति के पश्चात एक बैठक आहूत की जाती है जिसमें पिछले तीन माह में हिन्दी के क्षेत्र में हुयी प्रगति की समीक्षा की जाती है तथा तदसम्बन्धी आख्या परिषद मुख्यालय को भेजी जाती है। इस राजभाषा कार्यान्वयन समिति के अध्यक्ष निदेशक महोदय हैं जिनके द्वारा संस्थान के सदस्यों को अपना दिन प्रतिदिन का कार्यालय कार्य हिन्दी में ही करने हेतु प्रोत्साहित किया जाता है।

1. हिन्दी में टिप्पण

यह निदेशालय "क" क्षेत्र में स्थित है तथा 80 प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों को हिन्दी में कार्य करने की प्रवीणता प्राप्त है। इसके फलस्वरूप कार्यालय में टिप्पण लेखन का 95 प्रतिशत से अधिक कार्य हिन्दी में किया जा रहा है। अंग्रजी में प्राप्त पत्रों के लिए किऐ जाने वाले टिप्पण तथा नोटिंग भी हिन्दी में ही की जाती है।

2. राजभाषा अधिनियम 1963 की धारा 3 (3) का अनुपालन

राजभाषा अधिनियम की धारा 3(3) के अन्तर्गत जारी किए जाने वाले समस्त कागजात जैसे कार्यालय

100 प्रतिशत है तथापि संस्थान द्वारा प्रायः अंग्रेजी में प्राप्त पत्रों के उत्तर जहां तक सम्भव हो सके हिन्दी में देने का प्रयास किया जाता है। संस्थान द्वारा हिन्दी में प्राप्त सभी पत्रों के उत्तर केवल हिन्दी में ही दिए जाते हैं।

- विभागीय परीक्षाओं में हिन्दी में प्रश्नपत्र

संस्थान द्वारा संचालित विभागीय व प्रोन्नत परीक्षाओं में प्रश्नपत्र तैयार कर हिन्दी अथवा अंग्रेजी में प्रश्नपत्र हल करने का विकल्प दिया जा रहा है।

- रबड़ की मुहरें

संस्थान में सभी रबड़ की मुहरें द्विभाषी में तैयार कर उन्हें ही प्रयोग में लाया जा रहा है। सभी अनुभागों से कहा गया है कि वे केवल द्विभाषी मुहरों का ही प्रयोग करें तथा जो भी नई मुहरें बनाई जायें वे हिन्दी अथवा द्विभाषी मे ही हों।

- नामपट्ट, सूचना आदि

संस्थान के लगभग सभी नामपट्ट सूचनापट्ट तथा अन्य बोर्ड द्विभाषी बनाये गए हैं।

- सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्ट

संस्थान के सभी अधिकारियों तथा कर्मचारियों की सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टि हिन्दी में की जा रही है।

- हिन्दी प्रकाशन

चूंकि यह निदेशालय 'क क्षेत्र में स्थित है। अतः अपने हिन्दी भाषी क्षेत्र में होने के कारण यह निदेशालय अपनी अनुसंधान उपलब्धियों, मत्स्य पालन की नवीन तकनीकियों, मत्स्य पालन की नवीन विधियों आदि से परिचित कराने के लिए अपने प्रकाशनों साधारण जनता तक पहुंचाने के लिए हिन्दी में भी जारी करता है। इस दिशा में निदेशालय ने अपने उत्तर पूर्वी क्षेत्र में स्थित सहयोगी संस्थाओं, मत्स्य पालको के लिए भी हिन्दी, अंग्रेजी, असमी भाषा में अपनी अनुसंधान उपलब्धियों को प्रस्तुत किया है। निदेशालय द्वारा विशुद्व हिन्दी में जारी कुछ महत्वपूर्ण प्रकाशन इस प्रकार हैं:

- पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य अनुसंधान एवं विकास
- उत्तरांचल में मात्स्यिकी विकास की सम्भावनाऐं
- हिम ज्योति (वार्षिक)
- वार्षिक प्रतिवेदन
- समाचार पत्र (छःमाही)

- हिमालय पर्यावरण एवं मात्स्यिकी
- कुमायूं की झीलें
- कुमायूं की नदियां
- हिमालयन माहसीर– टौर प्युटीटोरा
- कृत्रिम अण्डजननशाला में महासीर मत्स्य बीज उत्पादन
- शीतजल मत्स्य आहार
- हिमालयन महासीर
- कुमायूं में मत्स्य पालन एवं संरक्षण
- पर्वतीय क्षेत्रों में स्नो ट्राउट मात्स्यिकी
- पर्वतीय मात्स्यिकी समाचार
- सुनहरी महासीर के प्रजनन की तकनीकी
- समाचार पत्रिका
- सुनहरी माहसीर
- हिमालय क्षेत्र में असेला (स्नोट्राउट) मात्स्यिकी
- शीतजल मत्स्य आहार

इसके साथ ही संस्थान की वीडियो फिल्म का हिन्दी संस्करण भी तैयार किया जा चुका है।

- **बैठकें**

संस्थान में राजभाषा कार्यन्वयन समिति की बैठकें प्रत्येक तिमाही में सम्पन्न की जाती हैं जिसमें प्रत्येक तिमाही के दौरान संस्थान में हिन्दी के क्षेत्र में हुयी प्रगति के बारे चर्चा की जाती है और तत्सम्बन्धी रिपोर्ट परिषद मुख्यालय को भेजी जाती है। इसके अलावा संस्थान की अन्य बैठकों में भी चर्चा हिन्दी की जाती है।

- **प्रशिक्षण कार्यक्रम**

निदेशालय में मत्स्य पालको, शोधार्थियों आदि के लिए समय समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किऐ जाते रहते हैं। यह प्रशिक्षण उनको हिन्दी में दिया जाता है। प्रशिक्षण के दौरान निदेशालय के वैज्ञानिकों द्वारा उनको मत्स्य पालन की नवीन जानकारियों से भी अवगत कराया जाता है।

संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इस संगोष्ठी में अहिन्दी भाषी वैज्ञानिकों द्वारा अपनी अनुसंधान उपलब्धियों को हिन्दी में बताया गया।

- राजभाषा वार्षिक कार्यक्रम

राजभाषा विभाग द्वारा प्रतिवर्ष जारी किए जाने वाले वार्षिक कार्यक्रम का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए संस्थान द्वारा जारी जिन मदों पर कार्यवाही अपेक्षित हो अथवा जिनमें लक्ष्य प्राप्त करने हेतु कार्यवाही की जानी हो, पर एक समयबद्व कार्यक्रम बनाकर उनका अनुपालन सुनिश्चित किया जाता है। इस प्रकार संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रयोग व इसकी उत्तरोत्तर प्रगति के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। इसमें संस्थान के सभी अधिकारी–कर्मचारी लगातार सहयोग देते हैं। संस्थान के वैज्ञानिक भी हिन्दी की प्रगति में लगातार प्रयत्नशील हैं।

उत्तराखण्ड के तराई भाबर में मछली पालन: गांवों की खुशहाली का एक उत्तम साधन

सुरेश चन्द्रा एवं आर.एस. पतियाल

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

प्रस्तावना

हमारे देश की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या गांवो में रहकर अपनी आजीविका का निर्वहन कृषि पर निर्भर रह कर करते हैं। गरीबी, कुपोषण, भोजन की कमी, बेरोजगारी आदि तरह की परेशाानियां अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में देखी जा सकती हैं। केवल कृषि पर निर्भर रहकर इन परेशानियों को दूर नहीं किया जा सकता है। उपलब्ध सभी तरह के संसाधन जिनका कम उपयोग हुआ है का उचित उपयोग करना आज की परम आवश्यकता है। किसानों में भी विविधिता और व्यवसायिकता की ओर बढ़ती रूची से कृषि के साथ–साथ अन्य व्यवसायों को अपनाकर इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है।

इस ओर कृषि सम्बन्धित अन्य व्यवसायों में मत्स्य पालन भी अब एक सक्षम आजिविका के साधन के रूप में स्थापित हुआ है। इसमें पोखरों तालाबों के पानी का सदुपयोग कार प्रोटीन युक्त भोजन, मछली के रूप में प्राप्त किया जा सकता है। यही नहीं खेती पशुपालन आदि से निकले सह–उत्पाद का मत्स्य उत्पादना में समुचित रूप से प्रयोग कर कृषक पौष्टिक आहार के अतिरिक्त अधिक आय अर्जित हो जाती है। मत्स्य पालन अनेंकों रूप में उपयोगी है।

सस्ती जीव प्रोटीन भोजन की उपलब्धता

अनेक तरह के खाद्य पदार्थो गेंहू का आटा, चावल, सेब, दूध, अण्डे आदि की अपेक्षा मछली के मांस में 15–25 प्रतिशत तक सुपाच्य प्रोटीन पाया जाता है। मछली के मांस में अन्य जीव मांस की अपेक्षा कनैक्टीव उतक कम होते हैं तथा यह खनिज तत्वों से परिपूर्ण होता है। मछली आसानी से पाचन योग्य एवं शरीर द्वारा अवशोषित हो जाती है। मछली में लगभग 50–55 प्रतिशत तक भाग खाने के उपयोग में

उपयोग पड़े रहते है। इनका प्रसंस्करण कर मछली तालाबों में खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। गोबर, मुर्गी की खाद एवं अन्य गांबों में मिलने वाली जैविक खादें तालाबों में खाद के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। समन्वित मत्स्य पालन इसी सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें मछलियों को दिये जाने वाले आहार जिस पर बहुत अधिक खर्च होता है कि बचत हो जाती है। इन उपायों से कम लागत में अधिक लाभ प्राप्त हो जाती है।

बिना उपयोग की भूमि का मत्स्य पालन द्वारा सदुपयोग

देश के अनेंकों जगह की भूमि निचली एवं वर्ष पर्यन्त पानी से भरी रहती है। इस तरह की कृषि अनुपयोगी जमीन का प्रयोग मछली पालन के लिये किया जा सकता है। इसी तरह कम उसरता प्रभावित क्षेत्रों में मिट्टी का उचित उपचार कर मत्स्य उत्पादन किया जा सकता है।

खाली पड़े गांवों के तालाबों, पोखरा एवं गड्ढों का मत्स्य पालन में उपयोग

देश में इस रूप में 23.6 लाख है0 जलक्षेत्र उपलब्ध है। वर्तमान में कुल 10 लाख है0 जलक्षेत्र का उपयोग मछली पालन के लिये किया जाता है। बचे जलक्षेत्र का अधिकाधिक प्रयोग कर गावों के तालाबों की साफ सफाई होने एवं परिवेश उचित रहने के साथ–साथ सकल मछली उत्पादन में यथोचित बढ़ोत्तरी प्राप्त की जा सकती है।

मत्स्य पालन द्वारा घरेलू अपवर्ज्य पदार्थो का उपचार

शहरों, कस्वों में रहने की ओर लोगों के बढ़ते रूझान से प्रतिदिन लाखों लीटर मलजल देश की नदियों जलाशयों की प्रदुषित करता है। इस मलजल को प्रारम्भिक छनन के बाद जलीय घासों द्वारा उपचारित कर जहां एक ओर जलीय प्रदुषण पर नियन्त्रण हो जाता है वहीं दूसरी ओर मत्स्य उत्पादन भी हो जाता है। हमारे देश के कलकत्ता शहर एवं जर्मनी के म्यूनिख शहर में उपचारित मलजल का प्रयोग बड़े स्तर पर मत्स्य पालन के लिये भी किया जाता है। भुवनेश्वर स्थित केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान ने मत्स्य पालन द्वारा घरेलू मलजल उपचार की एक सरलतम विधि विकसित की है।

भूमिगत जल स्तर बनाये रखने में मदद

गर्मियों के मौसम मे भूजल का स्तर नीचे जाने से देश के अनेक भागों में कुओं, हैन्डपम्प आदि से पर्याप्त पानी नहीं मिल पाता है। शायद यही कारण रहा होगा पारम्परिक रूप प्रायः गांवों में बड़े जलाशयों पोखरों/तालाबों का निर्माण किया जाता था। जो मछली पालन के साथ–साथ गांवों के जल की मांग को भी पूरा करते हैं। वर्षाकालीन समय में इस तरह के जलीय क्षेत्रों को गहरा कर तटबन्धों की मरम्मत कर

जाती है। धान की खेती की अपेक्षा मत्स्य पालन 2–2.5 गुना अधिक लाभप्रद है। एक हैक्टेयर के तालाब से कम से कम लगभग 3,000–4,000 किग्रा0/वर्ष उत्पादन में अनेक लोगों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रोजगार मिल जाता है। वर्तमान में मात्स्यकी क्षेत्र से लगभग एक करोड़ चालीस लाख लोगों को पूर्णकालिक या अंशकालिक व्यवसाय प्राप्त हो रहा है। यह संख्या मछली पालन के समग्र विकास के साथ और अधिक बढ़ सकती है। गांवों में पंचायत के तालाबों से प्राप्त आय, स्कूल, हास्पिटल, रोड आदि की मरम्मत एवं निर्माण में भी खर्च कर गांवों की खुशहाली में सहयोग हो सकता है। कृषकों द्वारा स्वयं भी मछली पालन शुरू कर अपनी आय में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

मत्स्य पालन की इन्हीं सब विविध उपयोगिताओं को ध्यान में रखते हुए यह व्यवसाय पूरे देश में उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप और बृहद रूप में अपनाये जाने की आवश्यकता है। लेकिन अनेकों जगह पर अपेक्षा के अनुसार मत्स्य उत्पादन न पाने के पीछे सक प्रमुख कारण उचित जानकारी का अभाव होना है। प्रस्तुत लेख में पहाड़ के तराई क्षेत्रों में अपनायी जाने वाली वैज्ञानिक मत्स्य पालन की आधुनिक लाभप्रद विधियों का विस्तार से उल्लेख किया गया है।

उपयोगी मत्स्य प्रजातियों की जैविकी

तालाबों में प्रमुख रूप से छः–सात तरह की मेजर कार्प प्रजातियों का पालन किया जाता है जिनकी विशेषता इनकी तीव्र बढ़वार मुख्यतः शाकाहारी प्रवृत्ति, साथ पालने से एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा नही के बराबर आदि प्रमुख है। यह पालन विधि कम्पोजिट पालन या मिश्रित मत्स्य पालन के नाम से भी जानी जाती है। हाल के दिनों में दूसरी तरह की मीडियम कार्प, कैट फिश एवं झींगा पालन का एकल या मिश्रित पालन भी अपनाया जाने लगा है। आर्थिक रूप से उपयोगी इन प्रजातियों की संक्षिप्त जैविकी इस प्रकार है :

रोहू (लेबियो रोहिता)

सामान्य नाम : रोही, रोहू

वैज्ञानिक नाम : लेबिया रोहिता
(Labeo rohita)

इसका शरीर लगभग गोलाकार नुकीला सिर एंव पंख हल्के लाल रंग के होते हैं। कतला मछली की अपेक्षा इसका शरीर लम्बाकार होता है, मुह छोटा एंव निचे का होठ दन्ताकार होता है। यह

यह तालाब के जल के बीच वाले स्तर में रहने वाली मछली है। छोटी अंगुलिकायें छोटे छोटे वनस्पति के सड़े गले अवशेष, प्लवक आदि खाती है जबकि बड़ी मछलिया सड़े गली वनस्पतियां, डिट्रीयस आदि खाती है। रोहू अपनी लैगिंक परिपक्वता दो वर्ष के अन्त तक प्राप्त करती है। एक किग्रा की मादा रोहू लगभग 1–2 लाख/किग्रा. तक देती है। यह वर्षाकालीन समय में प्रजनन करती है। इसक उत्प्रेरित प्रजनन इको हैचरीयों में संश्लेषित हारमोन द्वार किया जाता है। इनकी संचय संख्या ज्यादा गहरे तालाबों, में जहां शैवाल आदि हो में बढ़ाई जा सकती है।

कतला

सामान्य नाम : भाकुर कतला

वैज्ञानिक नाम : कतला कतला *(Catla catla)*

यह स्वदेशी प्रजातियों में सबसे तेज बढ़ने वाली प्रजाति है। इसका सिर बड़ा, मुहं थोड़ा ऊपर की तरफ एंव बिना दन्ताकार होता है। इनमें मुंछ आदि नहीं होते है। इसका उदर चौड़ा, चांदी की तरह चमकदार, भूरा और ऊपर का पंख बड़ा होता है। छोटी कतला की पहचान विशेष तरह के लालिमा लिये सिर, औपरीकुलम एवं शरीर के हल्के रंग से हो जाती है। तालाबों में यह सामान्य संचय दर पर लगभग 1 किग्रा से 1.2 किग्रा तक हो जाती है।

कतला मछली तालाब की ऊपरी सतह वाली प्रजाति है। अंगुलिकाओं का आहार छोटे छोटे प्लवक, जलीय कीड़े एंव वनस्पतियों के अवशेष आदि पर निर्भर रहती हैं। लौगिक परिपक्वता रोहू की तरह ही दो वर्ष की उम्र के बाद देखी जाती है। एक किग्रा की मादा कतला लगभग 1 लाख तक अण्डे देती है। यह भी मानसून महिनों में नदियों, बहते हुए जल में प्रजनन करती है। नियन्त्रित पनिवेश में बीज उत्पादन हेतु हैचरियां, बन्ध ब्रिडीग आदि उपयोग में लायी जाती है। प्रचुर जन्तु प्लतक वाले तालाबों में इनकी संख्या बढ़ाई जा सकती है।

मृगाल (सिरहीनास मृगला)

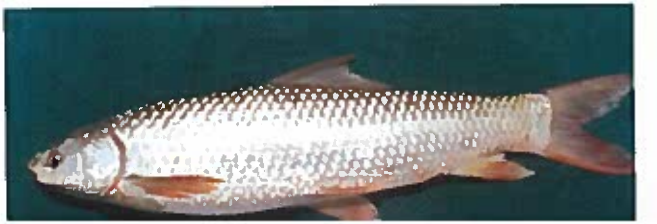

सामान्य नाम : नैनी, मृगल

वैज्ञानिक नाम : सिरहीनास मृगला *(Cirrhinus mrigala)*

है। होठ पतले होते है मुह पर दो बारबल छोटी छोटी मुंछ होती है। ऊपर के पंख को छोड़ सभी पंख बहुत हल्के गुलाबी रंग के होते है। छोटी मछलियों का रंग हल्का सा हरापन लिये वंए पीछे के सामान्य पंख की जड़ पर एक हीरे के आकार का धब्बा होता है। यह तालाब के पालन परिस्थिति में वर्ष में 600–700 ग्राम तक हो जाती है। यह सड़े वनस्पति एंव जन्तु अवशेषों, काई, डिट्राइट्स कीचड़ आदि का भक्षण करती है।

लैगिक परिपक्वता रोहू कतला की तरह की मृगल में भी द्वितीय वर्ष के अन्त तक प्राप्त होती है। नदियों एंव बहते जल में वर्षा के मौसम में यह प्रजनन करती है। तालाबों में पालित मछलियों का कृत्रिम प्रजनन हारमोन द्वारा किया जाता है। प्रति किग्रा मादा लगभग 1 लाख तक अण्डे देती है।

ग्रास कार्प

सामान्य नाम : ग्रास कार्प,

वैज्ञानिक नाम : *(Cetno-pharyngodon idella)*

यह प्रजाति मूलतः चीन देश की नदियों की है। भारत में यह सर्वप्रथम 1959 में कटक उड़ीसा में लायी गयी इसका शरीर गोल बेलनाकार, सिर छोटा लम्बा मुह होता है। ग्रास कार्प आरम्भिक अवस्था में लवकों एवं छोटे आकार की डकवीडस पर निर्भर रहती है। बड़ी मछलियां कोमल जलीय घास खाती हैं। यह बहुत अधिक खाने वाली मछली है। और ग्रहण किये गये भोजन का कुछ ही भाग पाचित होता है। शेष अर्ध–पचा या बिना पचा भोजन का अंश मल के रूप में बाहर निकल जाता है। जलीय घास के नियंत्रण में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक मछली प्रतिदिन अपने बजन के बराबर जलीय घास खा सकती है।

ग्रास कार्प वर्ष में लगभग 1.5 किग्रा. तक की हो जाती है। लैगिक परिपक्वता दो वर्ष के बाद ही प्राप्त होती है। इनकी अण्डजनन क्षमता लगभग 60,000–90,000 प्रति किग्रा. होती है। जलीय वनस्पतियों से आच्छादित तालाबों में इनकी संचय दर बढ़ाई जा सकती है।

सिल्वर कार्प

सामान्य नाम : सिल्वर कार्प

वैज्ञानिक नाम : हाइपथैलिमीकाइथैस मोलीट्रिक्स *(Hypophthalmichthys*

हुआ, सिर नुकीला, मुह बड़ा एवं ऊपर की तरफ होता है। शरीर के ऊपर सिल्वरी चांदी जैसे छोटे–छोटे शल्क (स्केल) होते हैं। पंख सभी गहरे होते हैं। आरम्भ में यह मुख्यतः जन्तु प्लवकों का भक्षण करती है। लेकिन उसके बाद वनस्पति प्लवकों को खाती है। यह सतह भोजी मछली है। तालाबों में यह तेज बढ़ने वाली प्रजाति है। एक साल में यह 1–1.5 किग्रा. से अधिक वनज तक ग्रहण कर लेती है।

लैगिक परिपक्वता दो वर्ष में होती है। नर मादा से पहले परिपक्वता प्राप्त करते हैं। इनकी अण्डजनन क्षमता 1.4–2 लाख/किग्रा. होती है। तालाबों में यह काई के नियन्त्रण में भी सहायक होती है।

कौमन कार्प

सामान्य नाम : कौमन कार्प, चाइना रोहू, अमेरिकन रोहू

वैज्ञानिक नाम : साइप्रिनस कार्पिओ *(Cyprinus carpio)*

कौमन कार्प की तीन उपजातियां पायी जाती है। जिनमें स्केल कार्प (साइप्रिनस कार्पिओ कम्यूनिस) साइप्रिनस कार्पिओ स्पेक्यूलेरिस (मिरर कार्प) एवं लेदर कार्प (साइप्रिनस कार्पिओ न्यूडस) है। इन सब में स्केल कार्प प्रमुख रूप से पाली जाती है। कौमन कार्प 1939 में पहली बांम भारत में प्रवेश पायी। अधिक सहनशील एवं आसानी से तालाबों में बढ़ने एवं प्रजनन करने की इनकी आदत के कारण यहर मछली काफी प्रचलित है। 1957 में फिर स्केल कार्प के बीज बैकांक से मगाये गये। इसी वजह से इसे बैकांक स्ट्रेन भी कहते हैं।

यह पूरे विश्व में पायी जाती है। यहर नितल पर रहने वाली सर्व भक्षी मछली है। तालाबों में यह भोजन की तलाश में तटबन्धी को खोदती है। जिससे तटबन्ध कमजोर पड़कर टूटने लगते हैं। यह उपलब्ग जीवाणु तथा सड़े गले वनस्पतियों एवं मलवों क भक्षण करती है।

यह वर्ष में 1 किग्रा. तक हो जाती है। मादा लगभग 1–2 लाख अण्डे/किग्रा. देती है। पहली परिपक्वता सामान्य तापमान में 6 माह में हो जाती है। यह तालाबों में स्वतः ही जनवरी–मार्च एवं जुलाई–अगस्त में दो बांम अण्डे देती है। तटवर्ती राज्यों में जहां मौसम ज्यादा ठंडा नहीं होता है वहां लगभग पूरे वर्ष प्रजनन करवाई जा सकती है।

तालाब तैयारी में पहला कार्य पानी के आगमन एंव निकास द्वार पर महीन जाली लगाना है। जिससे बाहरी अवंछित मछलियां, परजीवी, जलीय खरपतवार आदि तालाब में प्रवेश न कर सकें। इसके बाद यदि जलक्षेत्र जलीय घांसो से आच्छादित है तो उन्हें बाहर निकालना आवश्यक है।

जलीय घासों का उन्मूलन

जलीय खरपतवार की मत्स्य तालाबों में उपस्थिति के कारण् मछलियों के लिये उपयोगी पोषक तत्वों में कमी आ जाती है। इससे सकल उत्पादन प्रभावित होता है। हमारे देश की गर्म जलवायु एंव पोषक तत्वों से भरे गांवों कस्बों के जलीय क्षेत्र इनके अत्याधिक वषद्वि में सहायक होते है। अतः इनका नियन्त्रण आवश्यक हो जाता है इनकी तालाबों में उपस्थिति से रात्री के समय घुलित आक्सीजन की कमी हो जाती है। इसके अतिरिक्त अनेक रोग फैलने वाले परजीवियों का आश्रय भी ये बाधा उत्पन्न करते है। इसके सड़ने से कीचड़ (कावर्निक पदार्थो) आदि की अधिकता हो जाती हैं। इनकी तालाब में अधिकता उत्पादन की दष्ष्टी से नुकसानदायक होती है। तालाबों में पायी जाने वाली वनस्पतिया प्रमुख रूप से चार तरह की होती है।

1. जल–प्लवित जलीय खरपतवारः ये जल की सतह पर तैरती हैं। इनमें जलकुम्भी, सालवैरिया, स्पाइरोडिला, पिस्टिया, लेमना, एजोला आदि आते हैं।
2. जलोन्मग्न खरपतवार : इनकी जड़े तालाब, के निचले सतह पर होती है। लेकिन पत्तियां और फूल जल की सतह पर रहते है। इनमें कमल, निम्फिया मरवाना (यूरयिले) सिघाडा (ट्रापा) आदि।
3. पानी के अन्दर उगने वाली वनस्पतियॉः इस तरह की घासें पानी की सतह से नीचे रहती है। इनमें हाइड्रिला, नाजा, वैलिसिनेरिया, पोटामोजिटांन, सिरटोफाइलम, यूट्रीकुलेरिया आदि आते है।
4. शैवाल या काई : ये पानी के सतह अथवा निचे सुत्रवत चिपाचिपाहट लिये होते है और अधिकता की अवस्था में एक चद्दर सी बन जाती है। कुछ छोटे–छोटे गहरे हरे रंग के होते हैं। इनमें स्पाईरोगाइरा, पिथोफेरा, ओइडोगोनियम, माइक्रोसिस्टिस, एनाबिना, यूग्लीना, परीडिनियम आदि प्रमुख है।

जलीय खरपतवार की रोकथाम के उपाय

तालाबों की घासें श्रम द्वारा यन्त्रों अथवा जैविक उपायों द्वारा नियन्त्रित की जा सकती है। मानव श्रम या मशीनों द्वारा घासों का उन्मूलन कुछ परिस्थितियों में उपयोगी होता है। विशेषकर सतह पर पायी जाने वाली जलीय खरपतवार के लिये यह विधि उत्तम है। पानी के अन्दर वाली घासों के लिये पानी के नीचे घास काटने वाला यन्त्र भी उपयोग किया जा सकता है। कंटीले तार को तार को दो तरफ से खीचनें से भी कुछ तरह क जलीय वनस्पति का उन्मूलन किया जाता है। छोटे–छोटे सतह पर तैरने वाली काई जैसे

गोनिओनोटस मत्स्य प्रजातियां हाइड्रिला, सिरैटोफाइलम, पोटामोजिटौन, लैमना, वुल्फिया एवं नाजाज नामक घासों का भोजन कर इनकी रोकथाम में सहायक होती है। ग्रास कार्प मछली अपने वजन के बराबर प्रतिदिन घास खा लेती है एक है0 के तालाब में 300 ग्राम क 300–400 ग्रास कार्प मछलियां तालाब की हाइड्रिला दल कपामे एक महीने में साफ कर देती है।

जलीय घासों का उपयोग

निकाली गई जलीय घासों को एक गड्ढे में डालकर उसमें २ यूरिया एंव गोबर मिलाकर ढक दिया जाय, सड़ने के उपरान्त यह खाद तालाब में कम्पोस्ट के रूप में उपयोग की जा सकती है।

वैज्ञानिक ने निकाली जलकुम्भी के उपयोग की एक सुगम विधि विकसित की है। इसके अन्तर्गत जलकुम्भी को छोट–छोटे टुकड़ों में काटकर गोबर के साथ मिलाकर (1:3) वायोगैस संयन्त्र में डालने से गैस के साथ स्लरी भी प्राप्त होती है। जो तालाब में गुणकारी सस्ती खाद का कार्य करती है। जलकुम्भी को महीन पीस कर मत्स्य आहार के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है।

हिंसक एंव तश्णक अवांछनिय मछलियों एंव जीवों का तालाबों से उन्मूलन

अनेक तरह की दूसरी मछलियों का भक्षण करने वाली हिसंक एंव छोटी बड़ी तश्णक मछलियॉ जो तालाबों में बार–बार प्रजनन कर अत्यधिक संख्या में प्रवेश कर जाती है। ये पालन की गयी मछलियों को खाने के साथ साथ, जरूरी प्राकषतिक एंव सम्पूरक आहार को चर कर खा लेती है। फलस्वरूप कार्प प्रजातियां को बढ़ने के लिये आवश्यक आहार नहीं मिल पाता है। सांस लेने के घुलित आक्सीजन एंव स्वतन्त्र विचनण के लिये ये अवांछनिय मछलियां प्रतिस्पर्धा करती है। संचय की गयी मछलियॉ की संख्या भी घटने लगती है। और कमजोर होकर रागग्रस्त होने की सम्भावना भी अधिक बढ़ जाती है। इनके अतिरिक्त मेढ़क, कछुआ, सांप, उदबिलाब एंव मछलियां खाने वाली चिड़िया आदि भी कभी–कभी बहुत अधिक नुकसान पंहुचाते है। अतः इनका नियंन्त्रण भी आवश्यक है।

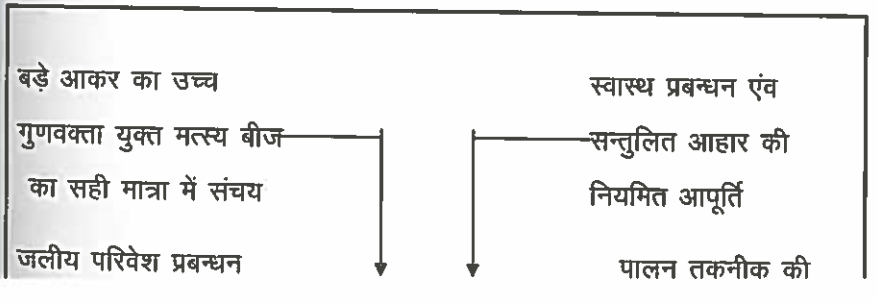

जिन तालाबों के सुखाना सम्भव हो उन्हें सुखाकर उसमें ब्लीचिंग पाउडर 200-300 किग्रा/हे के हिसाब से छिड़काव कर देना चाहिए। लेकिन जहां यह सम्भव नहीं है वहां तालाब का कुछ पानी कम कर महुआ की खली 2500 किग्रा/हे मी. का प्रयोग किया जा सकता है। जह मत्स्य विष के साथ साथ तालाब में सड़ने के बाद जैविक खाद का कार्य कर उत्पादकता को बढ़ाता है। यदि महुआ की खली उपलब्ध न हो तो बाजार में मिलने वाले ब्लिचिंग पाउडर 350 किग्रा/हे यूरिया 24 घण्टे पूर्व तालाब में छिड़क दिया जाता है। फिर 90-100 किग्रा ब्लिचिंग पाउडर छिड़क दिया जाता है। इससे तालाब में उपस्थित सभी मछलियॉ मर जाती है जिन्हें जाल चलाकर बाहर कर दिया जाता है। यह विधि अंवाछनिय मीनों के उन्मूलन में काफी प्रभावी होती है।

तालाब का खादीकरण

तालाब में संचित मछलियों के लिये प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक खाघ (प्लवकों) उपलब्ध करने तथा जलीय परिवेश को उत्तम रखने के लिये विभिन्न प्रकार के कार्बनिक एंव अकार्बनिक खादों के उपयोग किया जाता है इससे वर्ष भर मछलियों को प्राकृतिक आहार मिलता है साथ में तालाब का पारिस्थितिकी तन्त्र भी सन्तुलित रहता है। इनमें मुख्य रूप से चुना, गोबर, यूरिया, सुपर फास्फेट आदि शामिल हैं।

तालाब में यदि ब्लिचिंग पाउडर पहले उपयोग किया हो तो चूने का प्रथम बार में प्रयोग नहीं करते हैं, अन्यथा सामान्य मिट्टी का पी.एच. 6.5-7.5 तक हो, 200 किग्रा. चूना हे./मी. के हिसाब से देते है, यदि महुआ की खली का उपयोग किया हो तो दी जाने वाली चूने की मात्रा दो गुनी करे दें (400 किग्रा./हे./मी)।

गावों के तालाबों में गोबर की खाद 2-3 कुल्तल/हे./महीने मिलायें, इस मात्रा को पूर साल हर महीने में एक बार दें, 4-5 जगहों पर ढेर के रूप में देना ज्यादा प्रभावकारी होता है यदि महुआ की खली से तालाब साफ किया हो तो गोबर की खाद की आवश्यकता कम हो जाती है क्योंकि खाली तालाब में खाद का कार्य भी करती है अतः ग्रामीण तालाबों के परिवेश के मद्देनजन गोबर की दी जाने वाली मात्रा आधी की जा सकती है। यानि 3-4 कुन्तल प्रति महीने यह मात्रा दो तीन महीने के बाद दी जा सकती है। गोबर की खाद चूना डालने के करीब एक सप्ताह बाद देना उचित हैं।

एक सामान्य तालाब को उत्पादक बनाने के लिये गोबर की खाद के अलाया 100 किग्रा. नाइट्रोजन एवं 50 किग्रा. फास्फोरस की मात्रा की जरूरत प्रति हे. प्रति वर्ष पड़ती है। यह मात्रा 250 किग्रा. यूरिया एंव 320 किग्रा. फास्फोरस जिसमें फास्फोरस हो 16 प्रयोग करके पूर्ण की जा सकती है, जिसे वर्ष में 10–11 किस्तों में दी जाती है। यह मात्रा तालाब के पानी की गुणवता के अनुसार कुछ घटाई यो बढ़ाई जा सकती है। रासायनिक एंव कार्बनिक खादों (गोबर इत्यादि) को एक–डेढ़ सप्ताह के अन्तराल में देना ज्यादा

निर्मित कर सकते हैं जिससे 40–50 टन स्लैरी एक वर्ष में प्राप्त की जा सकती है इसके द्वारा 1–5 हे. जल क्षेत्र का खादीकरण आसानी से किया जा सकता है। ये संयन्त्र ब्लाक आफिस द्वारा भी निर्मित करवायें जाते है।

रासायनिक उर्वरकों की कमी जितनी नुकसान दायक हैं, उतनी अधिकता। क्योंकि बहुत अधिक खादों के प्रयोग से तालाब के पानी का रंग गहरा हो जाता है। कभी कभी पानी के ऊपर एक हरी परत सी पैदा हो जाती है जो सुबह के समय आसानी से देखी जा सकती है। इनकी अधिकता से रात्री के समय तालाब के पानी में आक्सीजन की भी हो जाती है, जिससे मछलियॉ मरने लगती हैं। अन्य तरह की बीमारियों का प्रकोप भी बढ़ जाता हैं। अतः उर्वरकों का सही प्रयोग आवश्यक हैं।

रासायनिक खादों की बढ़ती कीमतों को दृष्टिगत रखते हुए केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान ने एक नई विधि विकसित की हैं। जिसमें गांवों के कम गहरे जल वाली जगहों पर पाया जाने वाला एजोला नामक पादप जो पानी की सतह पर तैरता है। तालाब में जैव उर्वरक का काम करता है। यह एजोला 40 टन/हे/वर्ष के हिसाब से प्रयोग करने से रासायनिक खाद देने की जरूरत नहीं पड़ती है। केवल 25 किग्रा. फास्फेट का प्रयोग आवश्यक होता है, इसके प्रयोग से 100 किग्रा नाइट्रोजन (250 किग्रा. यूरिया के बराबर), 25 किग्रा. फास्फोरस (120 किग्रा. किग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट के बराबर), 50 किग्रा. पोटश एंव 1500 कार्बनिक पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। यह खाद के साथ आहार का भी कार्य करता है। इस तरह के पर्यावरण अनुकुल खादीकरण द्वारा तालाब का पानी भी ठीक रहता है।

गावों के तालाबों में मवेशियों के नहाने से घरेलू अनुपयोगी पदार्थो के मिलते रहने से एवं गौशाला आदि से निकला जल, विशेषकर बरसात के मौसम में ग्रामीण तालाबों में मिल जाता है। गोबर का उपयोग अन्य कृषि कार्यो में इस समय कम होता है, अतः ज्यादातर भाग इसका तालाबों में चला जाता है। इसी कारण यह अनिवार्य है कि समय–समय पर पानी की जांच करवाते रहें तथा इसी आधार पर उर्वरीकरण की मात्रा निश्चित करें।

यह सरलतम विधि में मोटा अनुमान करने के लिये एक पटरी के एक सिरे पर एक पिन या अन्य कोई चीज लगा दें फिर पानी में डुबायें जब लगाई गई पिन या अन्य चीज अदृश्य हो जाय तो उस लम्बाई का नोट कर लें, यदि 20–50 से0मी0 के बीच यह लम्बाई आती है तो सामान्यतः पानी ठीक है। अधिक लम्बाई में उत्पादकता कम एवं 20 से0मी0 से कम लम्बाई नुकसान दायक हो सकती है।

तालाब के पानी की गुणवत्ता का प्रबन्धन पानी की जांच कम से कम दो महीने में एक बार अवश्य करवा लेनी चाहिए। यदि कभी कोई समस्य उत्पन्न होने की सम्भावना दिखे तो सर्ब प्रथम तुरन्त पानी की जांच करवाना अत्यन्त आवश्यक है। इससे तालाब में पोषक तत्वों एवं रासायनिक गुणों के बारे में जानकारी मिल जायेगी, गोबर चूना, खली, या कना, एवं खादें सभी मूल्यवान हैं, इनका जरूरत से अधिक उपयोग

जितना बड़ा हो उतना ही अच्छा है। इनमें कुछ चीजें महत्वपूर्ण हैं।

तालाब के पानी की गुणवत्ता एंव पानी की गहराई के अनुसार विभिन्न कार्प प्रजातियों की संख्या एंव अनुपात का निर्धारण करें।

बड़े जलाशयों/पोखरों मे जहॉ समस्त अवांछनीय मीनों एंव कीड़ों का उन्मूलन किन्हीं कारणों से सम्भव न हो तो उनमें बड़ी अंगुलिकायें ही संचय करें। जिन तालाबों में बतख घूमते रहते हों वहॉ भी 100 मि.मी. आकार की अंगुलिकायें ही संचय करनी चाहिए।

एक हेक्टेयर तालाब में 8000–10000 तक फ्राई संचय की जाती है। जिसमें विभिन्न प्रजतियों का प्रतिशत इस प्रकार रखा जा सकता है, 30 प्रतिशत सतह की मछलियॉ (कतला और सिल्वर कार्प), 30 प्रतिशत मध्यस्तर की मछलियॉ (रोहू), 30 प्रतिशत नितल की मछलियॉ (नैन), 10 प्रतिशत ग्रास कार्प एंव कोमन कार्प। ध्यान रहे कौमन कार्प ज्यादा तालाब में संचय न करें अन्याथा तालाब में खाघ की कमी के अवसर पर ये बन्धों को मुँह से कुरेदना शुरू कर देते हैं, और धीरे धीर बन्ध टूटने लगते है। मछलियों का अनुपात क्षेत्रीय तालाबों की गुणवत्ता एंव मछली की वृद्वि के अनुसार लिखा गया है। यह संख्या एंव अनुपात जगह विशेष के उपलब्ध संसाधनों, मछली की वृद्वि, बाजार में कीमत एंव संचय की जाने वाली मछलियों की उपलब्धता के अनुसार निर्धारित की जा सकती है।

नदियों एंव हैचरी से प्राप्त जीरा यदि बहुत छोटा है तो उसे एक छोटे से तालाब में एक महीने तक संवर्धन नर्सरी प्रबन्धन के अनुसार करें। इसमें से आवश्यक मात्रा का बीज निकाल कर बड़े तालाब में संचय कर लें।

गावों के तालाबों में पादप प्लवकों की प्रचुरता होती है। इसके लिये संचय की जाने वाली सिल्वर कार्प की संख्या बढ़ाई जा सकती है। लेकिन यह भी ध्यान रहे कि इनकी बाजार में कीमत भी अच्छी मिले, कुछ तालाबों में नितल पर घेंघा इत्यादि प्रचुर मात्रा में पाया जाते हैं, इसके लिये यदि 1–2 प्रतिशत तक लेबियों कालवासु संचित कर दी जाय तो इनकी वृद्वि अच्छी होती है।

ऐसे क्षेत्र जहॉ जलीय एवं स्थलीय घासों की प्रचुरता हो विशेषकर हाइड्रीला, नाजाज, सिरटोफाइलम, बरसीम आदि वहॉ पर ग्रास कार्प की संख्या 5–10 तक की जा सकती हैं। ये एक वर्ष में 1.5–2.0 किग्रा. तक हो जाती हैं। इनके द्वारा निष्कासित अपवर्ज पदार्थ तालाब में खादीकरण के साथ–साथ अन्य मछलियों के लिये खाघ का भी काम करता हैं।

पूरक आहार का प्रयोग

चूकिं मछलियों को अधिक संख्या में संचय किया जाता है और खादीकरण द्वारा उत्पन्न प्राकृतिक

हुए यह मात्रा कम की जा सकती है। यदि मछलियों को कुल वनज 1000 किग्रा. है तो 2 किग्रा. से 3 किग्रा. तक खाना प्रतिदिन दिया जा सकता है।

बरसात के मौसम में जब गोबर का पानी रिस कर तालाबों में पहुँच जाता है, या बहुत अधिक ठन्डे के दिनों में, या बहुत अधिक तालाब के हरापन होने के समय अथवा सतहीकरण की स्थिति में पूरक खाघ देना कुछ दिन के लिये स्थगित करना उपयोगी है।

तालाब की मछलियों का कुल वजन ज्ञात करने के लिये महाजाल द्वारा मछली एक जगह पानी में एकत्रित कर ले, हर प्रजाति की 15–20 मछलियों का वनज कर लें उन्हें तालाब में छोड़ दें। फिर कुल संचित मछलियों को संख्या से गुणाकर कुल वनज का आंकलन कर लें। अनुभवों से ऐसा ज्ञात हुआ है कि यदि अच्छी तरह जाल चलाया जाय तो प्रथम बार 60–70 प्रतिशत तक मछली जाल में आ जाती है, जिनमें भाकुर, सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प, रोहू क्रमशः अधिक संख्या में तथा नैन एंव कौमन कार्प कम संख्या में आते है।

मत्स्य कृषक ग्रामीण तालाबों में चोरी के भय से दिन में जाल चलाने में सेकाच करते हैं, अतः उपयुक्त समय निधारिंत कर जाल 2–3 महीने के अन्तराल में वजन एवं स्वास्थ्य की देखभाल के लिये अवश्य चलये, इससे दोहरा लाभ होता है।

किसी भी परिस्थिति में यह अवश्य सुनिचित कर लें कि आपके द्वारा दिया जाने वाला खाघ पूर्ण रूप से मछली द्वारा उपयोग किया जाय इसकी बरबारी द्वारा आर्थिक नुकसान होता है।

मत्स्य उप्पादन

इस तरह से 6–7 तरह की देशी एंव विदेशी प्रधान कार्प को संचय करने से तालाब में उपस्थित समस्त स्तरों पर उपलब्ध प्राकृतिक आहार का उपयोग हो जाता है। तालाबों में पर्यावरण अनुकुल मत्स्य पालन अपना कर कृषक 4 टन/हेक्टेयर/ वर्ष उत्पादन कर 1 लाख तक लाभ आर्जित कर सकते हैं।

कार्प मछली उत्पादान की आर्थिकी 1 हेक्टेयर

क्र. सं.	मद	धनराशि
1	तलाब के लीज पर व्यय	25,000
2	ब्लींचींन पाऊडर/तालाब सफाई व्यय	5,000
3	मत्स्य अंगंलिकाओं पर खर्च	8,000

क्र. सं.	मद	धनराशि
7	अन्य खर्च	5,000
8	कुल योग	1,93,000
9	परिवर्तनीय खर्च पर ब्याज	2,413
10	कुल व्यय	1,95,413
11	4 टन मछली की बिक्री (75रू/किलो)	3,00000
12	**शुद्ध लाभ**	**1,04,587 (65.13% कुल खर्च पर**

सुनहरी महाशीर का प्रजनन एवं हैचरी प्रबन्धन

देबाजीत शर्मा, आर. एस. हालदर, एम. एस. अख्तर एवं पी. सी. महन्ता

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल, (उत्तराखण्ड)

भूमिका

सुनहरी महाशीर जिसे वैज्ञानिक रुप से टौर प्युटिटोरा के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है बड़ी साइप्रिनिडस हैं। ये दक्षिण पूर्वी एशिया के जंगलों की ऊष्ण कटिबंधीय नदियों से लेकर हिमालय की शीतजल जल वाली नदियों एशिया की तेज बहाव वाले पुरातन व स्वच्छ जल स्रोतों में वास करती हैं। अपने सजावटी सौन्दर्य संघर्श कौशल व बेहतर स्वाद के लिए इस की अत्यधिक मांग है। बडे शल्कों वाली कार्प महाशीर विश्व भर के शिकारियों के साथ साथ प्रकृती प्रेमियों को भी आकर्शित करती है। भारतीय उपमहाद्वीप में सुनहरी महाशीर भारतीय जल प्रणाली की राजा के रुप में वर्णित हैं, जिसका विस्तार प्रायद्वीपीय भारतीय नदियों के निचले क्षेत्रों तक विस्तृत है।

टौर प्युटीटोरा हिमालय क्षेत्र की बहुमूल्यवान देशी मछली के रुप में स्वीकार की जाती है। मध्य हिमालय क्षेत्र की अधिकांश नदियों धाराओं सहित आसाम, जम्मू व कश्मीर, सिक्किम, अफगानिस्तान, बंग्लादेश, चीन, बर्मा, (मयन्मार), थाइलैंड, कम्बोडिया, लाओस, नेपाल, पाकिस्तान, वियतनाम, इन्डोनेशिया, एवं मलेशिया से टौर की लगभग 20 विभिन्न प्रजातियों का पता लगा है। महाशीर ट्रांस–हिमालयी देशों में कृशि सहित मात्स्यिकी विकास के लिए एक सम्भावित मत्स्य प्रजाती है। प्राकृतिक जलस्रोतो में इस मछली की लम्बाई में 2.75 मि.मी. (9 फिट) और भार में 54 किग्रा. तक की वृद्धि देखी गई है। वर्तमान में इस आकार प्रकार की मछली यदा कदा ही दिखाई देती है।

इसमें कोई जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि महाशीर विश्व प्रसिद्ध आखेट योग्य एवं भारत की प्रमुख खाद्य मछली के रुप में प्रसिद्ध हैं। यह पूरे विश्वभर के आखेटकों को शिकारमाही में सालमन मछली

स्रोतों में इसकी संख्या में गिरावट आई है जिस कारण निकट भविष्य में यह संकटग्रस्त हो सकती है। कैप्टिव बीडिंग तथा सम्बर्द्धन तकनिकियाँ, मत्स्य संरक्षण व सतत् मत्स्य उत्पादन को बढावा देने के साधन हैं। अनेक वर्षों के अध्ययन के पश्चात टौर प्युटिटौरा की प्रजनन तकनीकी का विकाश डी.सी.एफ. आर. में किया गया है किन्तु सम्वर्द्धन तकनीकी अभी प्रयोगिक स्तर पर ही है।

प्रजनन विज्ञान

विस्थापन एवं अंण्डजनन

सुनहरी महाशीर रूक रूक कर प्रजनन करने वाली मछली है। इसके बारे में यह पता लगा है कि यह वर्श भर एक मुर्गी की भाँति अंतराल में अंण्डे देती है। इसके अण्डों को मुख्यतः मानसून के समय प्राप्त किया जाता है। टौर प्युटिटोरा के इस आन्तरायिक प्रजनन व्यवहार को व्यवहारिक रुप से नेपाल में स्थापित किया गया। गोनेडोसोमेटिक सूचकांक (GSI) के आधार पर यह पता लगा है कि प्राकृतिक जल स्रोतों में इस मछली के परिपक्वन की अवधी मई से अगस्त तक हो सकती है। महाशीर स्वच्छ पानी में अण्डे देना पसंद करती है। इस हेतु इसके विस्थापन की आदत से सभी लोग परिचित हैं। बाढ़ के दिनों में महाशीर नदी के उपरी क्षेत्रों की ओर बढती है और ताजा प्रजनन करने के लिए लम्बी दूरी तय करती है तथा किसी चट्टान के नीचे अण्डों का एक समूह देती है। यह प्रक्रिया मौसम में कई बार दोहराई जाती है। यह देखा गया है कि महाशीर अधिकाशतः बारिश के आरम्भ के समय प्रजनन करती है। प्रजनन के समय जहाँ तक कि पर्वतीय नदियों में अण्डे देने का सवाल है इसके लिए तापमान का विशिष्ट समायोजन, पी.एच. वेग, गदलापन एवं वर्षा आदि सामूहिक रूप से मछली को अण्डे देने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। सुनहरी महाशीर भी इसी प्रक्रिया का पालन करती है। मादा मछलियों में प्रजनन की पाँच अलग चरणों की पहचान की गयी है–

प्रथम चरण– अपरिपक्व लिंग द्वितीय चरण– परिपक्व लिंग त्तीय चरण– परिपक्वन चतुर्थ चरण– परिपक्व पंचम चरण– पूर्णपरिपक्व

प्रारंभिक अवस्था में नर और मादा मछली के जननांग समान आकार प्रकार के होते है। जब नर परिपक्व होता है तो Visceral carity में उतनी अधिक वृद्धि नहीं हो पाती जितनी की मादा मछली में होती है। नर मछली के जननांग में वृद्धि की गति बहुत अधिक होती है जिस कारण वह शीध्र ही प्रजनन करने योग्य हो जाती है। मादा में वृद्धि नहीं होने के कारण यह माना जाता है कि उसका भोजन आपूर्ति के साथ जो पुर्नउत्पादन संबंध होता है वह मानसून के दौरान कम हो जाता है। जिस कारण उसके अण्डे देने का समय देर से आरंम्भ होता है।

यह सर्वविदित है कि महाशीर अण्डे देने के लिए उथले पानी में उपर की ओर जाती है। यह देखा गया

अण्डे देने के उपरांत कम होते हुए पानी के साथ अण्डे देकर उँचाई से नीचे की ओर आ जाती है। ये अण्डे मानसून के दौरान परिपक्व होकर जीरा बन जाते हैं। टॆरप्युटिटोरा के जीरा पत्थरों के किनारों पर रहना पसंद करते है। क्योंकि ये पानी में निरंतर घुलते रहते हैं। महाशीर के अण्डे मिट्टी के बाजाए रेत अथवा पत्थरों पर अधिक दिखाई देते हैं। इस प्रजाती के प्रचार–प्रसार के लिए इसके जननकाल का निर्धारण एक अनिवार्य तत्व है। कुछ लेखकों द्वारा विविध जलवायु परिस्थितियों में विविध प्रजातियों का उल्लेख किया गया है। भारत के कुछ भागों में महाशीर की समान प्रजातियों की विभिनन प्रजनन आदतों के कारण इसके प्रजननकाल के परिक्रमण के संम्बंध में विभिन्न विचारधाराऐं हैं। भारत की उत्तर–पूर्वी नदियों में महाशीर एक अवधी में तीन बार प्रजनन करती है। उत्तरी भरत के मैदानों में प्युटिटोरा महाशीर के बारे में पता चला है कि प्युटिटोरा महाशीर वर्ष में कई बार प्रजनन करती है। इसके अतरिक्त महाशीर को विलुप्त होने से बचाने के लिए यह आवश्यक है कि बसका सम्वर्धन किया जाए तथा बसके बीजों को व्यापक पैमाने पर वितरित कर विभिन्न नदियों, धराओं, झीलों और जलाशयों में डाला जाए। महाशीर के बीजों कों आमतौर पर प्राकृतिक जलस्रोतों से एकत्र किया जाता है किन्तु वर्तमान में कृतिम गर्भाधान और हाइपोसैसन के द्वारा भी उत्पादन किया जाता है।

महाशीर बीज उत्पादन ईकाई

जल आपूर्ति

सफल मत्स्य पालन कार्यक्रम हेतु फार्म के लिए स्थल का चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है। फार्म के विकास तथा उसकी उपलब्ध जल की मात्रा की क्षमता को भी ध्यान में रखा जाए। महाशीर पालन के विभिन्न स्तरों पर जल की मात्रा के सम्बन्ध में आदर्ष षर्तें नीचे दी गई हैं।

हैचरी (अण्ड जनन शाला) के स्थल का चुनाव

जहाँ तक संभव हो सके हैचरी के लिए स्थान अधिक ऊँचाई पर ऐसी जगह पर होना चाहिए जहाँ पर पानी का समुचित प्रवाह हो तथा बाढ़ वाले क्षेत्र से बिल्कुल सुरक्षित हो। हैचरी–फार्म के लिए भू क्षेत्र और जल आपूर्ति कम ढलान वाली व समान तपीय स्तर वाली होनी चाहिए तथा साथ ही प्रग्रहण क्षेत्र पर कम से कम मानवीय गतिविधियाँ होनी चाहिए।

हैचरी निर्माण के लिए ऐसे स्थल को वरीयता देनी चाहिए जहाँ पर जल आपूर्ति का गुरुत्व फार्म एवं हैचरी की ओर हो सकता हो। हैचरी का जल स्रोत अच्छे प्रकार का एवं पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए।

अच्छे पानी का स्रोत

पानी का स्रोत या तो झरने की तरफ लिम्नोक्रीनी अथवा रिओक्रीनी या फिर ऐसे नालों–धाराओं का हो

हैचरी में पानी का वितरण इस प्रकार नियंत्रित होंना चाहिए कि प्रत्येक ईकाई जिसमें हैचिंग ट्रफ नर्सरी टैंक आदि के अलग अलग प्रवेश मार्ग हैचरी के विभिन्न अंगों जैसे पंम्पिग सुविधायुक्त ओवर हैड टैंक से आक्सीजन युक्त पानी ग्रहण कर सकें।

प्रजनन संग्रहों का प्रबन्धन

व्यापक पैमाने पर सुनहरी महाशीर के बीज उत्पादन के लिए उसके प्रजनक भण्डारों का या तो फार्म में या फिर प्राकृतिक जल स्रोतों में उपलब्ध होना पूर्व प्राथमिकता है। यह एक पालतू प्रजाति है। इस प्रजाति के बारे में यह कहा जाता है कि ये कुछ अन्तराल में गुणांत्मक आधार पर अण्डे देती है। परिपक्व प्रजनक प्रजननकाल में नदियों, झीलों, धाराओं और जलाशयों में तेज गति से जाती हुयी नजर आती हैं। इसको फाँसा जाल के द्वारा पकडकर सिट्रिपिंग विधि से प्रजनक के लिए उपयोग किया जाता है। मछली की यह प्रजाति क्रत्रिम प्रजनन के लिए अण्ड प्रस्फुटन जीरा, और अंगुलिकाओं के पोषण हेतु नियंत्रित वातावरण में भी व्यावहारिक है।

हैचरी

अण्डो और जीरों के पालन पोषण के लिए हैचरी एक छत के नीचे तथा अनेक ट्रफों व टेंकों की व्यवस्था सहित होनी चाहिए। हैचरी ऐसी होनी चाहिए जिसका निर्माण वास्तव में इसी उददेश्य के लिए किया गया हो। फर्श सीमेंट का बना होना चाहिए ताकि उसमें पानी साफ करने की व्यवस्था हो। हैचरी को सूर्य की किरणों के सीधे प्रवेश से सुरक्षित होने के साथ–साथ, साफ–सुथरे कार्य स्थल पर होना चाहिए।

ट्रफ

हैचरी ट्रफों को विभिन्न आकार प्रकार का होना चाहिए किंतु प्रत्येक ट्रफ में पानी रखने की इतनी क्षमता होनी चाहिए कि उसमें अण्डों, लार्वा व अविकसित भ्रूणों को पाला जा सके। आयाताकार ट्रफों (220.50.40. से.मी. अथवा 220.60.50 से.मी.) को समान्यतः ट्राउट हैचरियों में प्रयुक्त किया जाता है। इन ट्रफों को महाशीर के अण्डों से लार्वा व जीरों को बड़ा करने के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है। महाशीर के जीरों व अण्डों के पालन पोशण के लिए इन ट्रफों की गहराई 10–25 से.मी. भी बढाई जा सकती है। ये ट्रफ सीमेंट, एल्युमिनियम के बनाए जा सकते हैं किंतु फाइबर ग्लास से र्निमित ट्रफों को ही वरीयता दी जाती है। हैचिंग ट्रफों की व्यवस्था एक लाइन में इस प्रकार से होनी चाहिए कि उद्गम स्रोत से जल पहले अथवा प्रधान ट्रफ में आए तत्पष्चात अन्य ट्रफों में बारी बारी से आए। प्रत्येक ट्रफ में अवमुक्त आक्सीजन की मात्रा में वृद्धि हेतु अतरिक्त जल की आपूर्ति को उपलब्ध कराया जा सकता है। प्रत्येक ट्रफ का अलग प्रवेश व निकास द्वार होना चाहिए ताकि ट्रफ में पानी की उचित व्यवस्था की जा सके। एक ट्रफ में कम कम से कम पाँच हैचिग तष्तरियों को जिसमें 20000–25000 निषेचित

इंच तक होनी चाहिए। तश्तरी की बाहरी लम्बाई–चौडाई ऐसी होनी चाहिए कि उसको प्रत्येक ट्रफ की लम्बाई के साथ एक सीध में रखा जा सके। प्रत्येक तश्तरी में 4000–5000 निशेचित अण्डों को रखने की क्षमता होनी चाहिए।

नर्सरी तालाब

नर्सरी तालाब हैचरी का एक अन्य प्रमुख अंग है। जिसका प्रयोग महाशीर के पूर्व–अविकसित जीरों को पालने के लिए शुरुआती भोजन देने के लिए किया जाता है। इन तालाबों का आकार प्रकार भिन्न हो सकता है किंतु ये अधिक गहरे नहीं होनें चाहिए। छोटी महाशीर का सफल पालन उथले तालाबों में सम्भव हो सकता है। आयताकार नर्सरी तालाबों का आकार 2.0 गुणा 0.5 गुणा 0.6 मी. या 2.0 गुणा 0.7 गुणा 0.60 मी. तथा गोलाकार तालाबों का 2.2 गुणा 0.75 या 0.60 मी. व्यास हो सकता हैं। फाइबर ग्लास के उचित प्रवेश व निकास द्वार युक्त तालाबों के प्रयोग को वरीयता दी जा सकती है।

जीरा तालाब /टैंक

महाशीर अंगुलिकाओं के पालन पोशण के लिए नर्सरी तालाबों में पाले गए विकसित जीरों को निकालकर फार्म क्षेत्र में मिट्टी के तालाबों में स्थांन्तरित किया जाता है। इन जीरों के तालाबों/टैंकों के निर्माण में डामरीकरण, सीमेंट अथवा फाइबर ग्लास का प्रयोग किया जा सकता है। इसमें पानी को निरंतर बदलने की सुविधा का भी ध्यान रखा जाना चाहिए। इसमें पानी के प्रवाह की दर 2–3 ली/मिनट हो तथा क्षमता 1000 मी होनी चाहिए।

सहायक सुविधाऐं

हैचरी में अण्डों के उद्भवन भंडार सामग्री के पालन पोषण के अतरिक्त विभिन्न विश्लेषण एवं हैचरी कार्य के संचालन के लिए एक प्रयोगशाला तथा हैचरी उपकरणों को रखने के लिए एक भंडार का होना भी नितांत आवश्यक है।

अंण्ड जनन के समय तैयार मादा महाशीर की परिपक्वता का अंदाज उसके कोमल पेट को छूकर, गुहा (ऐनस) का गुलाबी रंग देखकर व इसके गर्भाशय पर हल्का दबाव देकर लगाया जा सकता है कि वह अण्डे देने के लिए तैयार है या नहीं। नर मछली में इसके गुहा के पास जब हल्का दबाव दिया जाता है तो शुक्र रस (मिल्ट) का तेज प्रवाह इसके परिपक्व होने की पुष्टि करता है।

प्रजनन तकनिकियाँ

प्रजनकों का संग्रह

के शुरुआती धंटों में अंण्डे लेने की प्रक्रिया से पूर्व लिंगों को अलग किया जाना चाहिए। अण्ड दोहन के पश्चात प्रजनकों को वापस पौंड में 5 प्रतिशत की दर से $Kmno_4$ के घोल में उचित तरीके डालकर छोड़ देना चाहिए।

अण्ड दोहन प्रक्रिया

निषेचन एवं उर्वरण हेतु केवल महाशीर के जीवित प्रजनकों का ही प्रयोग किया जाना चहिए। जब वे जाल में फँसे हुए हों तो परिपक्व प्रजनकों से अण्डों को तुरंत निकाल दिया जाना चाहिए ताकि उन्हें कोई नुकसान न पहुँचे। आमतौर पर मछलियों से अंण्डों का दोहन उर्वरण "शुष्क विधि" के द्वारा किया जाता है। इसमें अण्डों का दोहन एक सूखे पात्र या बेसिन में किया जाता है। पूर्णतः परिपक्व मछली या प्रजनक के पेट पर हल्के से दबाकर अण्डें की एक धारा निकलती है। इस प्रक्रिया को अनेक बार तब तक दोहराया जाता है जब तक परिपक्व अण्डे पूरी तरह बाहर नहीं निकल जाते। कभी कभार अण्ड दोहन के समय अण्डों के साथ कुछ रक्त भी आ जाता है जो कुछ अण्डों के अपरिपक्व होने, अधिक दबाव डालने आदि के कारण हो सकता है। इसके पश्चात अण्डों का दोहन तुरंत बंद कर देना चाहिए। महाशीर के अण्डें का रंग हल्के पीले से लेकर चमकीले नारेगी रंग का तथा उसका व्यास 2.5 से 3.5 मि.मी. होता हैं समान्यतः का रंगीनपन मछली के आवास स्थलों को सूचित करता है। ताजे दोहित अण्डें प्राकृतिक रुप में तब तक चिपचिपे होते हैं जब तक कि वे पानी में रहकर कठोर नहीं हो जाते।

अण्डों का निषेचन

अण्डों को दोहने के पश्चात समान कार्य विधि से नर मछली का शुक्राणु निकाला जाता है। 2–3 मादाओं से निकाले गए अण्ड़ो की पर्याप्त मात्रा के निषेचन के लिए एक चम्मच शुक्र रस पर्याप्त होता है। दोनों लिंगो के उत्पादों के मिश्रण के पश्चात उनको निषेचन के लिए तुरन्त एक स्थान पर रखा जाता है। पात्र के अन्दर अण्डों को सूर्य की प्रत्यक्ष किरणों से उचित प्रकार ढक कर रखा जाना चाहिए और कुछ समय के लिए उसको हिलाना–डुलाना नही चाहिए। अण्डों को पानी से 30–40 मिनट तक कठोर होने के लिए छोड़ देना चाहिए। इसके पश्चात बार–बार धोने के उपरान्त अतिरिक्त शुक्र रस और बाध्य पदार्थ घुल जाते है। पानी में कठोरीकरण के पश्चात निषेचित अण्डे 3.5–4.0 मि.मी. तक के हो जाते है। निषेचिकरण दर का मूल्यांकन "एसिटिक ऐसिड विधि" के द्वारा किया जाता है तथा कठोरीकृत अण्डो को 5: ग्लेशियल एसिटिक एसिड के मिश्रण में 24 घण्टे के लिए रख दिया जाता है। अकुंरक्षम अण्डे पारदर्षी हो जाते है जबकि अनिशेचित अण्डे कभी भी पारभाषी हो सकते है। परिवक्व प्रजनकों का उद्भवन करने के लिए उनका रख रखाव उचित प्रकार से किया जाना चाहिए ताकि 90% से अधिक निशेचन हो सके।

अण्डों का परिमाण एवं उद्भवन

पश्चात उनको हैचरी में सेने, उद्‌भवन एवं पालन–पोषण के लिए हस्तांतरित किया जाता है। हैचरी के अंदर निषेचित अण्डों को सूर्य की सीधी किरणों से बचाकर उचित प्रकार से सुरक्षित रखना चाहिए। इन निषेचित अण्डों को पर्याप्त आक्सीजन युक्त (7.5–9.0 मि.ग्र./लीटर) साफ व ताजे पानी की निरन्तर आपूर्ति में उद्‌भिद् किया जाता है। महाशीर के अण्डों के उद्‌भवन के लिए जल का तापमान 20–25° से.ग्रे. अधिक सुविधाजनक रहता है। हैचरी के अनुकूलतम वातावरण में 20–25° से.ग्रे. पर उद्‌भवन, तथा 10–12 दिनों में 80–95 घण्टो में अण्डपीत का पूर्ण अवशोषण हो जाता है।

अण्डों एवं जीरों का हवाई परिवहन

सुदूरवर्ती क्षेत्रों में महाशीर के बीजों का सुगमतापूर्वक वितरण एक गिली रूई में उसके अण्डों को रखकर हवाई परिवहन के द्वारा किया जाता है। पानी में कठोरीकरण प्रक्रिया के पश्चात अण्डों को गीली रूई में 2–3 परतों में सावधानीपूर्वक प्लास्टिक के बक्से में पांक्तिबद्ध रखा जाता है। अण्डों को सेंने का समय कम से कम 80 घण्टों का होता है, जो लम्बी दूरी के लिए अण्डों के परिवहन हेतु पर्याप्त होता है। अण्डों को सेंने का कार्य सामान्य प्रकिया के द्वारा किया जाता है।

खाली आँतो वाली मछली भरी आँतो की अपेक्षा आक्सीजन का उपभोग कम करती हैं। परिवहन के लिए पाचन के दौरान उत्पादित खराब पानी, अमोनिया, यूरिया आदि का प्रयोग किया जाता है। परिवहन से पूर्व मछलियों को अत्यधिक तनाव का अभ्यस्थ हो जाना चाहिए। मत्स्य परिवन के लिए विभिन्न आकार–प्रकार के प्लास्टिक बैगों अथवा कंटेनरों का जो कि पी.वी.सी., फाइबर ग्लास, लोहे या एल्युमिनियम आदि से निर्मित हों को प्रयोग में लाना चाहिए। अनुकूलन एवं परिवहन का समय बहुत अधिक लम्बा हो तो मछलियों को संकमण से बचाने के लिए 20–40 मिलिग्रम प्रति लीटर पानी में प्रतिरोधी (एन्टीबायटिक) दवाओं का इस्तेमाल किया जा सकता हैं। 0.05–03 कीचन साल्ट के प्रयोग द्वारा परिवहन के दौरान मछलियों में तनाव संवेदनशीलता और कियाशीलता कम हो जाती है। परिवहन के दौरान आवश्यकता से अधिक अर्थात ओवर लोडिंग से बचना चाहिए। परिवहन के पश्चात मछलियों को छोड़ते समय पानी की गुणवत्ता और तापकम का समान होना बहुत आवश्यक है।

महाशीर का पालन–पोषण (रैचिंग)

रैचिंग अर्थात पालन–पोषण को ऐसी मत्स्य–पालन प्रणाली के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें तरूण महासीरों को पानी में असुरक्षित भोजन पर छोड़ दिया जाता है तथा जहां उसका आकार–प्रकार बाजार में बेचने योग्य हो जाता है। इस प्रकार रैचिंग मछलियों के पुनः प्रसार की प्रभाव पूर्ण विधि है। रैचिंग के सम्बन्ध में बिलकुल भी भ्रान्त होने की आवश्यकता नही है कि मत्स्य वृद्धि या प्रत्यारोपण अथवा इसके भण्डार में वृद्धि को क्या कहा जाता है। रैचिंग का अर्थ है नदियों और जलाशयों में जीरों, अण्डों

निदेशालय ने सुनहरी महाशीर के बीज उत्पादन की पहल की है और उसके बीजों को भारत सहित विश्व के अन्य देशों की नदियों धाराओं और जालाशयों में संचयित किया है ताकि महाशीर मत्स्य उत्पादन में वृद्धि हो, साथ ही इस निदेशालय ने इस प्रजाति के जननद्रव्य को समाप्त होने से बचाने के लिए इसे सुरक्षित भी रखा है।

हैचरी में उत्पादित बीजों को पश्चिम बंगाल, सिक्किम, व हरियाणा राज्य के मत्स्य विभागों के साथ–साथ अन्य संस्थानों को भी हस्तांतरित किया जाता है। इस प्रजाती के बीजों को पापुआ न्यू गिनी की रामू तथा स्पिक नदियों में भी संचायित किया गया है। वर्ष 2001 में निदेशालय ने इसके बीजों को उत्तराखण्ड के कुमायूँ क्षेत्र की श्यामलाताल झील में संचयित किया जहां आज ये पर्याप्त मात्रा में फल–फूल रही है और पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बन रही है। इसी प्रकार के कार्यक्रमों को उन सभी क्षेत्रों में भी आयोजित किया जाए जहां महाशीर पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं।

डी. सी. एफ. आर महाशीर प्रजननशाला

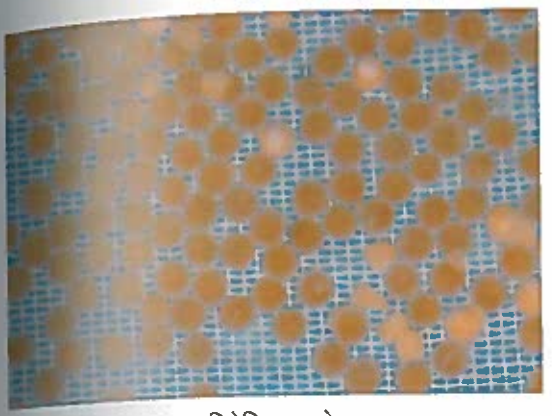

निषेचित अण्डे

अण्डों का उद्भवन

जीरा

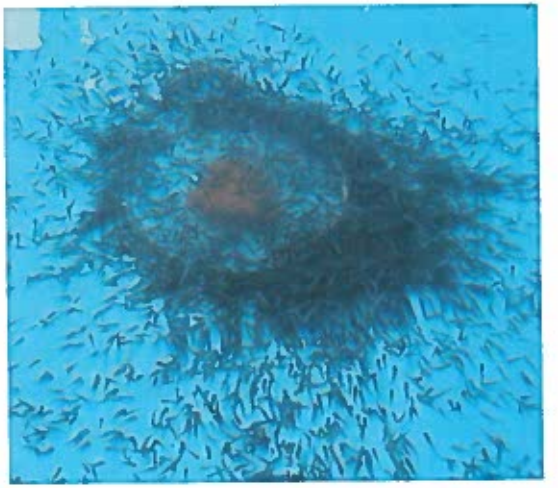

जीरा

पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य आखेट पर्यटन की सम्भावनायें

आर.एस. पतियाल, सुरेश चन्द्रा, प्रेम कुमार, ए. बराट एवं एन.एन. पाण्डेय

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

भारत वर्ष और प्रदेश के विकास में प्राकृतिक संसाधनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। पर्वतीय क्षेत्र सदा से ही विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक संसाधन जैसे खनिज, वन, जड़ी बूटी तथा जल सम्पदा का प्रचुर भण्डार रहा है। इन प्राकृतिक सम्पदाओं का संतुलित उपयोग विकास के लिये महत्वपूर्ण कदम होते हैं। आज हम यहां पर बात करेंगे पर्वतीय क्षेत्रों में उपस्थित विशाल जल संसाधनों में उपलब्ध मत्स्य संसाधनों में मत्स्य आखेट हेतु उसका कैसे उपयोग किया जा सकता है। मछली पर्वतीय क्षेत्रों में उपलब्ध जल संसाधनों का एक बहुउपयोगी उत्पाद है। इसमें उच्च कोटि का सुपाच्य प्रोटीन पाई जाती है इसकी खेती कर आमदनी बढ़ाई जा सकती है। अब मत्स्य संसाधन का प्रयोग मनोरंजन एवं पर्यटन हेतु नये अवसर पैदा कर रहा है।

अब हम चर्चा करेंगे मत्स्य आखेट क्या है। इसका शाब्दिक अर्थ है मछली का शिकार करना। मछली के शिकार तो कई ढंग से किये जाते हैं परन्तु इस विद्या में संतुलित ढंग से मछली का शिकार किया जाता है। जिसमें एंगलिंग रोड जिसे स्थानीय भाषा में कॉटा लगाना कहते हैं, का उपयोग किया जाता है। वैसे मत्स्य आखेट भारत के लिये नया नहीं है ग्यारहवी शताब्दी से ही इसका प्रचलन रहा है। आपने देखा होगा कि पर्वतीय क्षेत्रों में निगाले के डंडे में केंचुआ तथा आटे की गोली लगाकर नदी किनारें में मछली का शिकार करते हैं। इन शिकारियों का मुख्य उद्देश्य रहा है खाने के लियें मछलियों को पकड़ना। परन्तु धीरे–धीरे विकास के साथ–साथ इस विद्या का परिष्कृत/आधुनिक स्वरूप निखर आया जिसमें खाने हेतु मछली प्राप्त करने के साथ–साथ मछली को पकड़ना एक खेल की तरह स्थापित हो गया है इस खेल में जो आनन्द रोमांच की अनुभूति होती है उसे मत्स्य क्रीड़ा/एंगलिंग कहा गया है। अब मछलियां पकड़ना एक खेल कैसे हो सकता है। 'मत्स्य आखेट' मछली पकड़ना बहुत आसान नहीं है। इसके लिये धैर्य तथा कुशलता की

जब एक आखेटक एक मछली को पकड़ता है तो कई घंटो तक उसे एक ही स्थान में बैठा रहना होता है जो धैर्य का परिचायक है। किस प्रकार के वेटस का प्रयोग करें वह बुद्धि और विवेक का परिचायक है। जब मछली कॉटे में फंसती है तो उसकी संघर्षशीलता और चपलता का सामना करना एक रोमांच एवं कौशल है। कॉटें में फंसने के बावजूद कई घंटो तक मछली पकड़ में नहीं आती है उसको धीरे–धीरे खींचना होता है, छोड़ना होता है, इस तरह उसे थका कर पकड़ा जाता है। पर्वत घाटी के बीच कल–कल छल–छल करती जल की आविरल धारा एक अनुपम सौदर्य का संयोग कराता है।

अतः धैर्य, बुद्धि और विवेक, रोमांच और सौदर्य के संयोग से ही मत्स्य आखेट में असीम मनोरंजन प्राप्त होता है इसी कारण मत्स्य आखेट पर्यटकों के लिये आर्कषण का केन्द्र बनता जा रहा है।

भारत में मत्स्य आखेट (एंगलिंग) का स्वरूप

देश के पर्वतीय जल स्रोतों में मत्स्य आखेट (एंगलिंग) सदियों से प्रचलित है। स्वतंत्रता से पूर्व अग्रेंज शासक, उच्च अधिकारी, तत्कालीन महाराजा एवं सम्भ्रान्त लोग मत्स्य आखेट (एंगलिंग) को एक मुख्य आवकाशकालीन मनोरंजन का साधन मानते थे। इसलिये तत्कालीन शासकों द्वारा विदेशी प्रजाति की प्रमुख स्पोर्ट फिश, ब्राउन ट्राउट, को कुछ भारतीय जल स्रोतों में स्थापित करने हेतु प्रयास किये थे।

मत्स्य क्रीड़ा की सम्भावनाओं को परिलक्षित करने में अग्रेंजो का बहुत योगदान रहा है। 19 वी शताब्दी मे बिट्रानियों ने क्रीड़ा मात्स्यिकी की शरूआत की 1990 में डा0 मिशेल ने स्कोटलैड से ब्राउन ट्राउट के अण्डे लेकर आये, इसके लिये हिमालय क्षेत्र में हैचरी (आण्डजनन शाला) स्थापित की। इसी के तहत कल्यानी (उत्तरकाशी) मे ब्राउन ट्राउट तथा तलवाड़ी (चमोली) में रेनवो ट्राउट की हैचरी स्थापित की। सन 1985 में हेनरी रामजे ने कोशी नदी से महाशीर नैनीताल झील में डाली। गंगा/पिंडार नदियों में रेनवो ट्राउट एण्ड ब्राउन ट्राउट का संचय किया। इस तरह अग्रेंजो ने आखेट हेतु सुगम स्थलों में मछलियों का संचय कर मत्स्य आखेट की नींव डाली।

वर्तमान समय में यह शौक अभिजात्य वर्ग के साथ–साथ उच्च मध्यम वर्ग में भी लोकप्रिय होता जा रहा है। देश में मत्स्य आखेट (एंगलिंग) आधारित मत्स्य संरक्षण जागरूकता के प्रचार–प्रसार व प्रोत्साहन के लिये कुछ स्वयंसेवी संगठन, जैसे इण्डियन फिश कन्जरवेंशी, आसाम बोहरेली (एंगलर) एसोशियसन, आदि कई वर्षो`स प्रयासरत हैं। ये संगठन समय –समय पर विभिन्न नदियों में मत्स्य आखेट (एंगलिंग) प्रतियोगिताओं का आयोजन भी करते हैं। इस प्रकार का एक आयोजन, अन्तर्राष्ट्रीय एंगलिंग प्रतियोगिता, अप्रैल 2000 में उत्तरांचल राज्य के काली–शारदा नदी प्रखण्ड में किया गया, जिसमें अनेकों भारतीय तथा विदेशी आखेटकों ने भाग लिया। स्थानीय प्रशासन के सहयोग से आयोजित इस कार्यक्रम में नौकायन (रिवर राफ्टिंग) भी सम्मिलित किया गया था। इस कार्यक्रम में जौन मूर, पैट्रिक कैर, विजय सोनी, आदि,

सर्वेक्षण के अनुसार प्रत्येक विदेशी एंगलर प्रति सप्ताह लगभग 200 डालर व्यय करते है तथा भारतीय एंगलर 30 डालर

आखेट– योग्य मुख्य प्रजातियाँ

आखेटकें (एंगलर) द्वारा आखेटक छडी (फिशिग रोड) से जुड़ी हुई मजबूत डोरी के अन्तिम छोर से जुड़े हुए विभिन्न प्रकार के चारे युक्त कांटों से लुभाया, फंसाया व पकड़ा जाता है। एंगलिंग के द्वारा फंसने पर जो मछली अधिकतम सीमा तक छुड़ाने के लिये संघर्ष करती है, उन्हें आखेट –योग्य मछलियों की सूची में, उतनी ही अधिक वरीयता दी जाती है। इन आखेट योग्य मछलियों को स्पोर्ट फिश अथवा गेम फिश कहा जाता है। देशी तथा विदेशी आखेट योग्य मछलियां निम्नलिखित हैं :

भारतीय प्रजातियाँ

1. सुनहरी महाशीर
2. उच्च पृष्ठ महाशीर
3. ताम्र महाशीर
4. काली महाशीर
5. चाकलेट महाशीर
6. भारतीय ट्राउट
7. पत्थरचट्टा

विदेशी प्रजातियाँ

1. ब्राउन ट्राउट
2. रेनबो ट्राउट

मत्स्य आखेट के लिये उपयुक्त देशी प्रजातियों में, सुनहरी महाशीर का स्थान सर्वोच्च है। सुनहरी महाशीर भारतीय एंगलरों के साथ–साथ विदेशी एंगलरों की भी प्रमुख पसन्द है। तत्पश्चात् उच्च पृष्ठ महाशीर ताम्र महाशीर व चाकलेट महाशीर प्रजातियाँ आती हैं। आखेट योग्य अन्य देशी प्रजतियों में, भारतीय ट्राउट तथा कुछ विडाल एवं विदेशी प्रजातियाँ सम्मिलित हैं

मत्स्य आखेट क्षेत्रः– वर्तमान में उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में जहां पर पर्यटक मत्स्य आखेट हेतु

श्यामलाताल में एंगलिंग किये जाते हैं। इन क्षेत्रों में आखेट करन हेतु लोग देश विदेश से आते हैं। काली नदी में स्थित पंचेश्वर से लेकर टनकपुर तक महाशीर एंगलिंग हेतु विश्व विख्यात है।

पर्वतीय क्षेत्र में विशेष कर उत्तराखण्ड में मत्स्य आखेट के विकास की अपार सम्भावनाएं हैं मत्स्य आखेट के प्रबंधन की जब हम बात करते हैं तो इसका विकास इस ढंग से किया जाये कि जिसमें आर्थिक लाभ स्थानीय लोगों को मिलना चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित दोहन हो, जिससे प्रजातियों की निरन्तरता बनी रहे, इस निमित विभिन्न विभागों का संयोजन होना आवश्यकीय है। जिसमें वन, मत्स्य, पर्यटन विभाग, तथा स्थानीय पंचायतें मिलकर एक संगठित प्रयास कर सकते हैं। जिसमें वन विभाग तथा मछलियों का अनैतिक/असंगत दोहन पर रोक लगाये। मत्स्य विभाग/चिन्हित स्थानों पर मछलियों का संचय करें। तथा टूरिज्म विभाग एंगलिंग प्रतियोगिता प्रायोजित करें तथा आधारभूत ढाँचे का विकास कर छोटे-छोटे इकाईयों को संगठित कर ग्राम इकाई को इनसे जोड़े जो स्थानीय व्यवस्था जैसे गाईड, रहने, खाने की व्यवस्था स्थानीय लोगों की देख रेख में किया जाये। इस प्रकार संगठित कार्ययोजना पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य आखेट को एक कुटीर उद्योग की तरह स्थापित कर सकते हैं।

पर्वतीय जल संसाधन

किसी भी कार्ययोजना को क्रियान्वित करने के लिये संसाधनों की आवश्यता होती है भारतवर्ष के पर्वतीय क्षेत्रों में नदियों, सदाबहार नाले, झीलों एवं जलाशयों के रूप में, विपुल जल संसाधन उपलब्ध हैं। पर्वतीय क्षेत्रों से बहने वाली समस्त नदी तंत्रों की सम्मिलित लम्बाई लगभग 10,000 किमी. है। प्राकृतिक झीलों में लगभग 20,000 हेक्टेयर तथा जलाशयों के रूप में 50,000 हे0 की जलराशि उपलब्ध हैं।

इन पर्वतीय जल संसाधनों में कुल 258 मत्स्य प्रजातियाँ पायी जाती हैं। जिनमें से 203 प्रजातियाँ हिमालय क्षेत्र में तथा 91 प्रजातियाँ दक्षिणी पर्वतीय क्षेत्र में पायी जाती हैं। पर्वतीय मछलियों के प्रमुख वर्गो में माहसीर, बर्फानी ट्राउट, कार्प, वेरिल, विडाल एवं विदेशी कार्प, सम्मिलित हैं।

मत्स्य पर्यटन विकास की दिशाएं

पर्वतीय राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में छोट स्तर व असंगठित रूप से विद्यमान मत्स्य पर्यटन को , संगठित व वृहद् स्वरूप देकर, एक प्रमुख आर्थिक स्रोत के रूप में विकसित किया जा सकता है। इसके लिये योजनाकारों, प्रशासकों, आखेटकों, वैज्ञानिकों, मछुआरों, पर्यावरणविदों व समान्यजनों की सहभागिता व योगदान से, वाछिंत लक्ष्य सुगमता से प्राप्त किया जा सकता है। मत्स्य पर्यटन के विकास हेतु निम्न कार्यक्रम पर अमल करना होगा :

1. पर्वतीय क्षेत्र की विभिन्न नदियों तथा सदबहार नालों में से लगभग 3700 किमी. लम्बाई के नदी

अथवा एंगलिंग के लिये आरक्षित कर, इनमें उपयुक्त प्रजाति की मात्स्यिकी विकसित की जानी चाहिए। मात्स्यिकी संवर्द्धन कृत्रिम रूप से बीज उत्पादन कर इन नदी तन्त्रों में संग्रहित भी किया जा सकता है। इनमें से उच्च हिमालयी क्षेत्र में स्थित प्रखण्डों में ब्राउन ट्राउट तथा निचले क्षेत्रों में माहसीर वर्ग क मछलियां, संग्रहित व विकसित की जा सकती है।

2. पर्वतीय जल संसाधनों में उपरोक्त आखेट–योग्य प्रजातियों की संख्या व आकार में निरन्तर कमी आती जा रही है, जिसकें प्रमुख कारणों में, जलीय वातावरण मे प्रतिकूल परिवर्तन तथा अत्यधिक मत्स्य दोहन सम्मिलित हैं। अतः मत्स्य आखेट हेतु आरक्षित जल स्रोतों में, आखेट–योग्य प्रजातियों का संवर्द्धन एवं संरक्षण आवश्यक है। इन स्रोतों में केवल एंगलिंग रौड में मछली पकड़ने की अनुमति देनी होगी, अन्यथा एंगलिंग हेतु, वांछित मछलियों की उचित संख्या व आकार उपलब्ध नहीं हो पाएगा।

3. पर्यटन स्थलों के निकट अथवा मार्गो में जल की सुचारू व्यवस्था होने पर, समुचित स्थानों पर आखेट (एंगलिंग) हेतु मत्स्य तालाबों का निर्माण किया जाना चाहिए।

4. मत्स्य आखेट के अतिरिक्त मत्स्य दर्शन भी, पर्यटकों को आर्कषित करने का एक अन्य साधन है। गंगा नदी में,हरिद्वार तथा ऋषिकेश व गोमती नदी में वैजनाथ (उत्तराखण्ड) तथा रेणुका झील (हिमाचल प्रदेश) में लोग मत्स्य दर्शन के लिये भी एकत्रित होते हैं। इस प्रकार कुछ अन्य नदी प्रखण्डों, झीलों अथवा जलाशयों को संरक्षित कर , मत्स्य दर्शन स्थलों का विकास किया जा सकता है।

5. मत्स्य पर्यटन गतिविधियों के विकास व विस्तार के लिये इन स्थलों पर स्तरीय मूलभूत सुविधाएं जैसे– उचित सड़कें, यातायात, संचार, होटल, खान–पान, आदि उपलब्ध करानी होगीं। पर्यटन व्यवसाय को बहुआयामी स्वरूप देने के लिये एंगलिंग व मत्स्य दर्शन के साथ–साथ, साहसिक पर्यटन, जल क्रीड़ा, नौकायन (रिवर राफ्टिंग), आदि सुविधाओं का भी विकास किया जाना चाहिए।

6. वहुधा ऐसा देखा जाता है कि क्षेत्रीय लोगों को कुछ एंगलर पकड़ी गयी मछली का वजननुसार पैसा देकर मछलियों को पुनः नदी में छोड़ देते हैं। अतः आखेटकों के लिये "कैच एवं टीलोज" पद्धति को प्रतिसमाहित करना चाहिए। जिसमें मछली को पकड़कर पुनः नदियों में वापस छोड़ा जाता है

7. मत्स्य आखेट में बहुत दूर आपरेटर्स सक्रिय हैं इनके लिये सुगम, सरल तथा लाईसेंस नीति बनाई जानी चाहिए तथा संरक्षण तथा संतुलित शिकार हेतु बनाये गये नियमों का कड़ाई से पालन होना चाहिए।

रंग बिरंगी, सजावटी मछलियां

एस.के. गुप्ता, एस.के. श्रीवास्तव, एस. चन्द्रा एवं देवाजीत शर्मा

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

पूरे विश्व में लोगों का सबसे बड़ा शौक है फोटों खीचना, एवं पुरानी यादों को संयोग कर रखना। फोटोग्राफी के बाद सवसे बडा शौक अगर है तो वो है रंग बिरंगी मछलियों को एक्वेरियम में रखना और उनकी खुबशुरती को निहारना। आज विश्व में सजावटी मछलियों को एक्वेरियम में रखना एक बहुत ही उभरता हुआ शौक के रूप में बढ़ रहा है। दूसरे पालतू जानवरों की तुलना में एक्वेरियम में सुन्दर–सुन्दर रंग विरंगी मछलियों को रखना आसान ही नही उनका रखरखाव भी बहुत सरल है। एकबार एक्वेरियम के पानी में अनुकूलित होने पर आसानी से कृत्रिम भोजन (Feed) को खाना प्रारम्भ कर देती हैं। शांत पानी में चलती हुई रंग बिरंगी मछलियॉं देखने में बहुत ही मनमोहक एवं आनन्दायक होती हैं।

अगर आप दबावपूर्ण जीवन यापन कर रहे हैं तो एक्वेरियम रखना काफी फायदेमन्द हो सकता है। शांत एवं सुन्दर मछलियों को प्रतिदिन देखने से मनुष्य का मस्तिष्क शान्त रहता है, एवं यह कई प्रकार के रोगों के निवारण में सहायक होती हैं। एक अध्ययन से यह पता चला है कि प्रतिदिन एक्वेरियम ग्लास से रंग विरंगी मछलियों को देखने से मानसिक दबाव एवं रक्तचाप को कम किया जा सकता है। जो बच्चे अत्यन्त उत्तेजना की बिमारी से ग्रसित होते हैं उनको ये शान्त रखने में काफी हद तक करगर सावित होते हैं। दांत की बिमारी वाले मरीजों को दर्द के समय में रंग विरंगी मछलियों को निहारने से राहत मिलती है, इसलिए डैन्टल क्लीनिक के प्रतिक्षालय कमरे में एक्वेरियम रखा जाता है।

वैज्ञानिकों के शोध से यह पाया गया है कि Alzheimer's disease के रोगी भी एक्वेरियम के मछलियों को देखकर काफी लाभान्वित होते हैं। बच्चों को विभिन्न तरह की मछलियों के प्रजातियों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है, अतः यह शैक्षणिक ज्ञान भी प्रदान करता है और अनुशासन एवं मिलजुल कर रहने का पाठ भी सिखाता है।

विभिन्न प्रकार की रंग बिरंगी मछलियाँ पूरे विश्व में पायी जाती हैं जिनको मुख्यतः दो श्रेणियों में बाँटा

एक्वेरियम की बनावटः

घरों में जगह की उपलब्धता के अनुसार आप अपने एक्वेरियम को बनाकर रख सकते हैं। एक्रिलिक (Acrylic) ग्लास वाली चाइनिज मॉडल जो कि सिर्फ एक (Mould) से बनी होती हैं, बाजार में उपलब्ध है। आप शीशे का एक्वेरियम भी अपनी आवष्यकता एवं आकार के अनुसार बना सकते हैं। इसमें कुल 5 ग्लास के भाग होते हैं। दो साइड में एक नीचे, एक सामने और एक पिछे जो कि सिलिकॉन जैल से (Silicon gel) एक गन के सहारे समतल जगह पर रखकर चिपकायी जाती हैं और सुखने के लिए एक दिन तक छोड दिया जाता है। ग्लास से पानी लिकेज होने पर दुबारा उस जगह पर सिलिकॉन जेल लगाकर बन्द कर दिया जाता है। ग्लास की मोटाई का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए जब आप बड़े आकार के एक्वेरियम बनवाते हैं। 2x1.5x1.5 (लम्बाईxचौड़ाईxऊँचाई) घन फीट शुरूवात के लिए सबसे अच्छा विमितीय (Dimenion) माना जाता है।

सामग्री

एक्वेरियम के रख रखाव के लिए जरूरी उपलब्ध सामग्रियाँ इस प्रकार हैं।

1. वायलोजिकल फिल्टर
2. पम्प
3. रंगीन पत्थर छोटे एवं बडे आकार
4. विधुत बल्ब
5. एक्वेरियम पौधे
6. एक्वेरियम ढ़क्कन
7. पानी का निमज्जक पनडुब्बी हीटर (Submersible Water Heater)
8. वायु पत्थर एवं वायु संचारण (aeration pipe) पाईप
9. पोस्टर पिछे पैनल के लिए
10. Floating फीड

समायोजन

एक्वेरियम ग्लास को घर के किसी शान्त जगह में उचित समतल स्थान पर रखा जाना चाहिए ताकि मछलियों के रहने में कोई बाधा उत्पन्न न हो। एक्वेरियम में सबसे पहले बडे आकार के रंगीन पत्थर को नीचे वाली सतह पर रखें उसके ऊपर छोटे आकार के रंगीन पत्थर को रखें। एक्वेरियम के अन्दर पानी

का तस्वीर को फैविकौल से चिपका दें। तत्पश्चात एक तगड़ी रंगीन मछली को डालकर pre conditioning के लिए दो दिन तक छोड दें। तगड़ी रंगीन मछली स्वस्थ अवस्था में पाने के बाद बाजार से लाई हुई कीमती रंगीन मछलियों को एक्वेरियम के पानी के नये वातावरण के साथ अनुकूलित (Acclimatize) होने के बाद छोड़ दें।

प्रजातियाँ

मीठे पानी की सजावटी मछलियों में गोल्ड फिस का नाम सबसे अग्रणी है। क्योकि इनके बहुत सारे रंग बाजार में उपलब्ध हैं। इसके अलावा मोली, प्लेटी, स्वोर्डटेल, शार्क (मीठे पानी), गुरामी, डानिया, लोचेज बार्ब आदि हैं जो कि आपके एक्वेरियम की खुबसुरती को मनमोहक बनाती हैं। गपीस, एंजेल, मोलीस, गोल्ड फिस एक साथ भी रखी जा सकती हैं। एक्वेरियम में होने वाले शैवाल को कम करने के लिए एक शकर कैटफिस बडी ही उपयुक्त मानी जाती है।

एक्वेरियम पौधे

प्राकृतिक रूप से पानी के अन्दर पायी जाने वाली पौधे जैसे कबम्बा, हाईड्रिला, वैलिसनेरिया, माइरियोफिलम, एवं एकाईनोडोरस एक्वेरियम में रखने से इसकी खुबसुरती में चारचाँद लग जाता है। आज कल बाजार में विभिन्न रंगों के कृत्रिम एक्वेरियम पौधे को आसानी से लगाया जा सकता है।

पोषण

बाजार में उपलब्ध Floating फीड को सुबह शाम देना अत्यन्त आवश्यक है। पानी की सतह पर तैरने वली फीड सजावटी मछलियों द्वारा खाई जाती है जिससे इनको सन्तुलित आहार (उपयुक्त Protein, Carbohydrate, Fat, Vitamin and Mineral) मिलता है जिससे अपने आप को स्वस्थ रखती हैं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आप न ज्यादा और न कम फीड खाने के लिए दें। ज्यादा खाना देने से एक्वेरियम का पानी जल्दी खराब हो जाता है, जो कि रंग विरंगी मछलियों के स्वास्थ के लिए हानिकारक होता है। इसलिए आप जब भोजन दें तब उनके फिड़िंग को ध्यान से देखें। इसी तरह कम खाना देने से कई प्रकार की बिमारियों के शिकार भी हो सकती हैं।

पानी की गुणवत्ताः

समय समय पर पानी की गुणवत्ता की जाँच भी जरूरी होता है। पानी की अम्लता एवं क्षरियता की जाँच के लिए पी. एच. (pH meter) मीटर, तापमान के लिए थर्मामीटर (Thermometer) और पानी में घुले ऑक्सीजन के लिए डी. ओ. मीटर (D.O. Meter) की जरूरत होती है। सामान्यतः pH:7-8, Temperature: 25-30°C और

तक डालकर लगातार तीन दिन तक देने से वाह्य परजीवी बीमारी से बचाया जा सकता है। इसके अलावा लाल दवा ($KMno_4$) @ 0.5ml/ liter, या मिथिलीन ब्लू 1: या आयोडिन पानी में घोल कर रोगी मछलियों को 5 मिनट तक डुवा कर तीन दिन रखना चाहिए। समय–समय पर गन्दे पानी को बदलने से बीमारी को दूर किया जा सकता है।

स्वायत्तशासी निकायों में दोहरी लेखा प्रणाली: एक दृश्यावलोकन

भूपेश चन्द्र पॉण्डेय एवं गणेश दत्त अमोला*

सहा0 वित्त एवं लेखा अधिकारी, शीतजल मात्स्यिकि अनुसंधान निदेशालय, भीमताल
*वित्त एवं लेखा अधिकारी, केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

लोकसभा समिति ने अपनी 60वीं रिर्पोट में यह सुझाव दिया था कि सभी स्वायत्तशासी निकाय एवं सस्थाऐं जो भारत सरकार से प्रतिवर्श अनुदान प्राप्त करती है, एक मानक प्रारूप में अपने लेखे बनायें क्योंकि इन संस्थाओं द्वारा वर्श 2004 से पहले बनाये जाने वाले लेखे न केवल अपूर्ण होते थे अपितु सम्बन्धित संस्था का पूरा आर्थिक परिदृष्य भी नहीं दर्शाते थे । यहॉ पर यह उल्लेख करना भी युक्तिसंगत होगा कि किसी भी संस्था के सही लेखे ही समय–समय पर उसकी कार्य प्रणाली का आंकलन एवं नीतिगत निर्णय लेने का सशक्त माध्यम होते हैं । स्वायत्तपोषी निकायों के वार्षिक लेखे 2004 से पूर्व सिर्फ आय एवं व्यय का विवरण ही दर्शाते थे और उनमें विभिन्न मदों में एक बडी धनराशि वर्शो से असमायोजित पडी रहती थी; परन्तु उसका विवरण कहीं भी लेखों में नही दर्शाया जाता था । समिति ने यह भी पाया कि शीघ्र ही स्वायत्तपोषी निकायों की लेखा रिर्पोटिंग प्रणाली का भी पुनरीक्षण किया जाय । उक्त संस्तुतियों को स्वीकार करते हुए भारत सरकार ने 26 मई 1999 को लेखा प्रणाली में दक्षता प्राप्त एक उच्च स्तरीय समिति का गठन किया जिसमें लेखा–नियंत्रक तथा नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक के नामित सदस्य, चार्टेड एकाउटैंट संस्था; कास्ट एवं वर्क संस्था व बैंक संघ के सदस्य सम्मलित थे । उक्त समिति ने लेखों के लिऐ ऐसे प्रारूप तैयार करवाये जो कि स्पष्ट, पारदर्शी तथा लेखों को समझने में सरल हों। इन स्वायत्तपोषी निकायों की उपलब्धियों तथा देश की सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति में इनकी भागीदारी तथा उनके द्वारा प्रतिवर्ष खर्च किये जा रहे धन को देखते हुए उनका सही आंकलन करने में ये संशोधित प्रारूपों में बने लेखे अब सटीक सिद्ध हुए हैं । उक्त समिति द्वारा दी गई सभी संस्तुतियों को भारत सरकार ने अक्षरशः स्वीकार कर लिया और सभी स्वायत्तपोषी निकायों को इनके शीघ्र कार्यन्यवयन के निर्देश जारी किये गये । उक्त सभी संस्तुतियां भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली ने भी स्वीकार करते हुए अपने सभी संस्थानों को निर्देश दिये कि 1 अप्रैल 2004 से वे अपने लेखे दोहरी लेखा प्रणाली के आधार पर तैयार करें तथा इस

है । उक्त सभी लेखे दोहरी लेखा प्रणाली के सिद्धान्त पर आधारित हैं । अब संस्थाओं की स्थाई सम्पत्तियों में निर्धारित मानदंडों के अनुसार प्रतिवर्ष मूल्य–ह्रास भी लगाना अनिवार्य है जबकि वित्तीय वर्ष 2004 से पहले स्थाई सम्पत्तियों में किसी प्रकार का मूल्य–ह्रास नही लगाया जाता था ।

उक्त निर्देशों के परिदृष्य में अब लेखा अनुभाग, प्रशासनिक अनुभागों एवं अनुसंधान कार्यो में संलग्न सभी विभागों का उत्तरदायित्व बढ गया है । सभी विभागों को अपनी–अपनी परिसम्पत्तियों का योजना एवं गैर योजनावार ब्यौरा रखना होगा तथा जब भी कोई उपकरण निष्प्रयोज्य किये जाने के बाद केन्द्रीय भंडार को वापस किया जाता है तो उसके क्रय श्रोत का विवरण भी देना आवश्यक होता है ताकि सम्बन्धित लेखों में इसके अनुसार प्रविष्टयॉ की जा सकें । इसके अतिरिक्त विभागों को वर्षभर रासायनों एव प्लास्टिक, कॉच के सामान के प्रयोग का उचित विवरण रखना होगा क्योंकि प्रतिवर्ष 31 मार्च को बचे हुए ऐसे सभी सामानों का मूल्य आर्थिक चिटठे की सारिणी संख्या 7 में परिचालित संपत्तियों में दर्शाना होगा । इसके अतिरिक्त वैज्ञानिको एवं अन्य अधिकारियों द्वारा टी0 ए0, एल0टी0सी, चिकित्सा तथा अन्य कार्यो हेतु आहरित अग्रदाय धनराशि जो कि 31 मार्च को असमायोजित थी उसको भी आर्थिक चिटठे में परिचालित संपत्तियों में दर्शाना होगा । इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष भवन निर्माण तथा अन्य कार्यो हेतु केन्द्रीय निर्माण विभाग तथा अन्य संस्थाओं की निर्गत की गई धनराशि जो असमायोजित है उसको भी परिचालित संपत्तियों में दर्शाया जाएगा। संस्थानों द्वारा जो अपने कर्मचारियों को ब्याज में गृह निर्माण तथा वाहन खरीद आदि हेतु धनराशि उधार दी जाती है उसकी वित्तीय वर्ष के अन्त में अवशेष धनराशि को भी उक्त सारिणी में दर्शाना अनिवार्य है जिससे वसूली जानेवाली अवशेष धनराशि की जानकारी वार्षिक लेखों में उपलब्ध हो सके। इसके अतिरिक्त जो संस्थान बीज, वैक्सीन, तथा बीजू पौधे आदि की विक्री, मछली का बीज आदि अन्य सरकारी एवं गैर सरकारी विभागों को उधार में देते है उसका भी विवरण आर्थिक चिटठे में परिचालित देनदारियों में सारिणी संख्या 4 में दर्शाना होगा । संस्थानों को ऐसी खरीदों का भी पूर्ण विवरण आर्थिक चिटठे की इस सारिणी में दर्शाना होगा जिनमें 31 मार्च को सामान की प्राप्ति तो हो चुकी हो परन्तु भुगतान किसी कारणवश नही हुआ हो । भारत सरकार से प्रतिवर्ष परिषद के माध्यम से संस्थानों को सरकारी अनुदान प्राप्त होती है और नियमानुसार 31 मार्च को इस अनुदान की अवशेष राशि भारत सरकार को लौटानी अनिवार्य है, यदि किसी कारणवश ऐसी धनराशि 31 मार्च तक नही लौटाई जा सकी तो उनका भी उल्लेख आर्थिक चिटठे कि परिचालित देनदारियों में दर्शाना अनिवार्य है । इसी प्रकार खरीद एवं अन्य संविदा कार्यो हेतु ठेकेदारों द्वारा जमा की जाने वाली धरोहर राशि तथा विद्यार्थियों द्वारा जमा की गई जमानती रशि जो 31 मार्च को संस्थानों के खातों में अवशेष थी उसका भी विवरण आर्थिक चिटठे की परिचालित देनदारियों में दर्शाना होगा । कर्मचारियों एवं वैज्ञानिकों के वेतन से प्रतिमाह आयकर सामुहिक जीवन बीमा, प्रोफेशनल टैक्स, न्यू पेंशन स्कीम आदि के रूप में की जाने वाली कटौती जो अगले वित्तीय वर्ष में सम्बन्धित विभागों

बढ गया है जिसका सभी को ईमानदारी के साथ निर्वहन करना होगा। तभी संस्थानो के आर्थिक ब्योरे की सही तस्वीर बन सकेगी।

तालाब के लिए भूमि का चुनाव

ए.के. सिंह* एवं आर. एस. पतियाल

*राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, लखनऊ
शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

कृषि की भॉति मत्स्य पालन में भी वही कार्यप्रणाली अपनायी जाती है जिसके द्वारा उत्पादन में वृद्वि की जा सके। इसमें तालाब की मिट्टी तथा पानी का महत्वपूर्ण योगदान है। इनका रासाकनिक विश्लेषण करके कहां तालाब बनवाया जाय या इनमें कितना पोषण तत्व मिलाया जाय आदि का पता लगाते हैं।

भूमि का चयन

मत्स्य पालन कार्य का प्रारम्भ तालाब या मत्स्य प्रक्षेत्र के निर्माण से होता है। तालाब निर्माण के लिए निम्न बातों को आधार मानकर भूमि का चयन किया जाता है :

1. स्थान पथरीला न हो और वहॉ 2–2.5 मीटर गहराई तक अच्छी मिट्टी हो (बालू या बड़े पत्थर न हों)। यदि संभव हो तो जंगल के समीप की भूमि उपयुक्त होगी।
2. भूमि मन्द ढलान लिये हुये हो जिसमें तालाब से पानी का निकास सुगमता से हो सके।
3. भूमि में करीब 90 प्रतिशत मृदा हो और बजरी की मात्रा 10 प्रतिशत से अधिक न हो।
4. मृदा का पी–एच लगभग 7 हो। नाइट्रोजन 0.1 प्रतिशत, फॉसफेट 0.01 प्रतिशत और कार्बन 1.0 प्रतिशत हो। साथ ही यह मिट्टी कार्बनिक और अकार्बनिक खाद के प्रयोग करने पर अनुक्रियित हो अर्थात् ये उर्वरक तालाब में प्रचुर मात्रा में प्लवकों के वृद्वि हेतु उपलब्ध रहें।
5. भौम जल स्तर अधिक नीचे न हो, अन्यथा ग्रीष्मऋतु में तालाब के पानी का रिसाव अधिक हो जाने की संभावना रहती है।
6. चिरस्थायी जल स्त्रोत की व्यवस्था सुनिश्चित हो।

सूक्ष्म जीवों, कार्बनिक पदार्थों लवण, जल और वायु का एक संयुक्त मिश्रण है। यह मिश्रण विभिन्न प्रकार के छोटे–छोटे कणों से निर्मित है, जिनमें मुख्यतः कार्बनिक कण (पेड़ पौधों जीव–जन्तुओं के क्षयज पदार्थ) एवं कण (बालू, चिकनन मिट्टी, बजरी, पत्थर) होते हैं। ये घटक विभिन्न अनुपातों मे मिलकर नाना प्रकार की मृदाओं की रचना करते हैं। (सारणी 1 एवं 2)।

सारणी 1 : मिट्टी की संरचना के अनुसार मृदा–गठन (प्रतिशत शुष्क भार)

मृदा के साधारण नाम (सामान्य गठन)	रेत	गाद	चिकनी	गठन वर्ग मिट्टी
रेतीली मिट्टी	86–100	0–14	0–10	रेत
(स्थूल गठन)	70–86	0–30	0–15	दुमट रंत
दुमट मिट्टी	50–70	0–50	0–20	रेतीली दुमट
(साधारण स्थूल गठन)				
दुमट मिट्टी	23–52	28–50	7–27	दुमट
(मध्यम स्थूल गठन)	20–50	74–88	0–27	गादीय दुमट
	0–20	88–100	0–12	गाद
दुमट मिट्टी	20–45	15–52	27–40	दुमट (चिकनी)
(साधारण सूक्ष्म गठन)	45–80	0–28	20–35	दुमट (चिकनी रेत)
	0–80	40–73	27–40	दुमट (चिकनी गाद)
चिकनी मिट्टी	45–65	0–20	35–55	रेतीली चिकनी मिट्टी
सूक्ष्म गठन	0–20	40–60	40–60	गादीय चिकनी मिट्टी
	0–45	0–40	40–100	चिकनी मिट्टी

सारणी 2 : विभिन्न मृदा प्रकारों के कणों का व्यास

मृदा के प्रकार	कणों का व्यास
बजरी (Gravel)	2 मिलीमीटर से अधिक

तालाब की तली मिट्टी की बनी होती है और तालाब निर्माण के समय इस मिट्टी का प्रयोग बन्धों को बनाने के लिये किया जाता है। अतः यह जानना आवश्यक है कि इस स्थान विशेष की मष्दा में जल–धारण की कितनी क्षमता है। मृदा की इस विशेषता को मृदा पारगम्यता (Permeability) कहते हैं। तालाब के निर्माण से पूर्व इस स्थान की मिट्टी की पारगम्यता को परखना तालाबों की तली और बन्धों से हो रहे रिसाव को राकने की व्यवस्था करनी पड़ती है, लेकिन इसमें भी अतिरिक्त व्यय की संभावना रहती है। जल–रिसाव की अधिकतम सीमा लगभग 125 सेमी. प्रति वर्ष निर्धारित की गई है। तालाब के निर्माण में अच्छी मृदा, मजबूत, एवं अपारगम्य बन्धों के बनाने में सहायक है। नम एवं दुमट भूमि तालाब निर्माण हेतू उपयुक्त मानी गई है।

तालाब के रखरखाव में निस्यंदन दर (Seepage rate) का काफी महत्व है। एक व्यवसायिक मत्स्य–पालन में 1.2 सेमी. प्रतिदिन तक की निस्यंदन दर ठीक मानी जाती है। यदि यह दर 10 सेमी. प्रतिदिन या इससे अधिक पहुँच जाती है तो जल आपूर्ति पर व्यय अधिक होगा। ऐसी स्थिति में शाधक उपाय अपनाना आवश्यक हो जाता है।

मृदा – पारगम्यता का मापन

मृदा पारगम्यता नापने के लिए निम्नलिखित तीन स्थलीय परीक्षण किये जा सकते हैं।

1. दृष्टिगत परीक्षण
2. सहज स्थलीय परीक्षण
3. विधिवत् परीक्षण

दृष्टिगत जांच के अन्तर्गत मृदा के प्रकार, उनका गठन, मृदा परिधि एवं विभिन्न मृदा–परिधियों की पारगम्यता इत्यादि का अध्ययन आवश्यक है। सहज स्थलीय निम्नवत् किया जा सकता करीब एक मीटर लम्बा, एक मीटर चौड़ा और एक मीटर गहरा एक गड्ढा खोदें एवं प्रातःकाल इस गड्ढे को ऊपर तक जल से भर दें, ताकि मृदा पर्याप्त जल सोखकर संतृप्त हो जाये। अगले दिन प्रातःकाल फिर इस गड्ढे को ऊपर तक जल से भरें। सांयकाल तक इस गड्ढे में यदि लगभग 80 सेमी. जल थमा रहता है तो उस स्थान की मृदा–पारगम्यता तालब निर्माण हेतु उपयुक्त है। इस परीक्षण को उस क्षेत्र में कई अन्य स्थानों पर कर लेने से मृदा–पारगम्यता का सही अनुमान हो जाता है।

मृदा पारगम्यता के विविधत् परीक्षण के अर्न्तगत जिस स्थान विशेष की भूमि का पारगम्यता – गुणांक ऑकना हों वहॉ एक भूमि छेदक बाल्टीनुमा बरमे (Bucket auher) की सहायता से एक मीटर गहरा गड्ढा

मृदा गठन का निर्धारण

प्रथम विधि :– तालाब निर्माण के लिये चुने गये स्थल की नम मृदा को हथेली पर लेकर ताकत से मुट्ठी बाँधे, फलतः मिट्टी एक गोले का रूप ले लेगी। अब इस मिट्टी के गोले को हवा में करीब 60 सेमी. ऊँचे उछाले और फिर उसे हथेली पर रोकें। यदि हथेली पर पहुँचते ही वह गोला चूर–चूर हो जाये तो मिट्टी अधिक रेतीली है और यदि लगभग उसी आकार में रह जाती है तो वह मिट्टी चिकनी तथा अच्छी है। यही मिट्टी तालाब–निर्माण हेतु उपयुक्त है।

दूसरी विधि :– इसके लिये उस स्थान की मृदा को सर्वप्रथम पानी द्वारा गूँथकर छोटे–छोटे गोले बना लें। फिर इन गोलों को किसी सख्त सतह – जैसे दीवार या पेड़ – पर लगभग 3–4 मीटर दूरी से फेकें एवं ध्यान से देखें–

1. फेंकते ही यदि गोले बिखर जायें तो मृदा स्थूल गठित है एवं तालाब निर्माण योग्य नहीं हैं।
2. वह मृदा मध्य श्रेणी की मानी जाती है जिसके गोले सतह तक पहुँचते तो हैं, परन्तु चूर–चूर हो जाते हैं। यह मृदा भी तालाब निर्माण हेतु उपयुक्त नहीं मानी जाती है।
3. यदि फेंका हुआ मिट्टी का गोला सख्त सतह पर चिपक जाये परन्तु आसानी से सतह से छुड़ा लिया जा सके तो वह साधारण सूक्ष्म गठित मृदा हैं एवं तालाब निर्माण हेतु उपयुक्त है।
4. फेंका हुआ गोला यदि सतह पर स्थायी रूप से चिपक जाये और कोशिश के बाद छूटे तो ऐसी मृदा सूक्ष्म गठित होती है जिसमें पानी तो थम जाता है पर इसकी उत्पादकता कम होती है।

मृदा को एक गुण उसकी गाढ़ता (Consistency) भी मानी गई है जो मृदा में उपस्थित जल की मात्रा के साथ बदलता है। जल की मात्रा जो कि किसी मृदा की एक गाढ़ता को दूसरी गाढ़ता में परिवर्तित करती है उसे मृदा की एटरबर्ग (Atterberg limit) सीमा कहलाती है। वे सीमाएँ जिनका महत्व मत्स्य पालन में आंका गया है, मुख्यतः दो प्रकार की हैं–

1. **तरल सीमा (liquid limit)** : जल की वह मात्रा (प्रतिशत में) जो मृदा की तरलता को प्लास्टिक गाढ़ता में परिवर्तित करने में प्रयोग हो।
2. **प्लास्टिक सीमा (plastic limit)** : जल की वह मात्रा (प्रतिशत में) जो मृदा के अर्थठोस गाढ़ता को तरल गाढ़ता में परिवर्तित करने में प्रयोग हो।

किसी भी मृदा की तरल एवं प्लासिटक सीमाएँ उस मृदा में उपस्थित चिकनी मिट्टी की मात्रा पर निर्भर करती है। यदि मृदा में चिकनी मिट्टी की मात्रा अधिक है तो उसकी तरल एवं प्लास्टिक सीमाएँ भी अधिक होगी। रेत, बजरी एवं पीट में प्लास्टिकता का अभाव होता है, अतः इसकी प्लास्टिक सीमा लगभग

3 मिली मीटर मोटी और 10 सेन्टीमीटर लम्बी छड़ बनायें। यदि बनने में कठिनाई हो तो थोडा और पानी मिलाकर मिट्टी को गूथे और फिर छड़ बनाएँ। इसी तरह थोड़ा–थोड़ा पानी मिलाते रहें और बेल्लित करते जायें, जब तक कि वह छड़ बन न जाये। अब छड़ बनाने में लगे पानी मात्रा नाप लें। तदुपरान्त मृदा की प्लास्टिक सीमा परिकलन कर प्राप्त कर लें। जलकृषि में एटरबर्ग सीमाओं के कुछ क्रांतिक मान (Cricital value) इस प्रकार है– यदि मृदा की तरल सीमा लगभग 35 प्रतिशत हो तो ऐसी दशा में बांधों के निर्माण में अन्तरतम भित्ति की आवश्यकता पड़ती है और ऐसी स्थिति में जिस मृदा का प्रयोग किया जाता है उसमें प्लास्टिक सीमा 20 प्रतिशत से कम तथा तरल सीमा 60 प्रतिशत से कम होनी चाहिए। यह जानना भी अति आवश्यक है कि मृदा मे जल संतृप्तता (saturation) के प्रतिरोध की क्षमता क्या है। इसे हम एक साधारण परीक्षण द्वारा ज्ञात कर सकते हैं।

जॉच के लिए लायी गयी मृदा को पानी से भलीभॉति गूँद लें एवं लगभग 10 सेन्टीमीटर व्यास वाले कई गोले बना लें। तत्पश्चात् एक 20 लीटर जल धारण– क्षमता वाली बाल्टी लें इसमें चार पॉच गोलों को रख दें और देखतें रहें यदि कुछ ही घंटों में ये गोले टूटने लगें या विलीन हो जायें तो वह मृदा बंधों के निर्माण हेतु उपयोगी नहीं होगी और यदि गोले लगभग 24 घंटे तक वैसे ही बने रहते हैं तो बंधों के निर्माण हेतु इस मृदा का प्रयोग उपयुक्त होगा।

इस प्रकार हम देखते है कि मत्स्य प्रक्षेत्र की अभिकल्पना (design) एवं निर्माण में मिट्टी का चुनाव एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, अतः प्रत्येक पत्स्य पालक या मत्स्य प्रक्षेत्र निर्माता को मृदा के दो विशेष गुणों की जानकारी रखनी चाहिए :

(क) उत्तम जल धारिता (higher water retention)

(ब) उत्तम उर्वरता (good fertility)

इन दो गुणों के आधार पर जल कृषि सर्वोत्तम मृदा दुमट है जिसमें सिल्टी मृत्तिका दुमट और मटियारी दुमट को सर्वोत्तम स्थान दिया गया है। अतः तालाब निर्माण हेतु उपयोग की जाने वाली मृदा में तीन आवश्यक गुण होने चाहिए : अपारगम्यता (nonpermeability), बॉधने की क्षमता (compressibility) और दबाव अवरोधक क्षमता (compactibility) इन्ही विशेषताओं के आधार पर तालाब निर्माण हेतु विभिन्न प्रकार की मृदाएँ परखी जाती है (सारणी 3)।

मृदा की ऊपर सतह का परीक्षण करने के बाद लगभग 3 फुट गहरा एक काट लगायें और निचली मिट्टी का विश्लेषण करा लें, क्योंकि तालाब तैयार होने पर नीचे की मिट्टी पर ही उसका तला बनेगा। इस मिट्टी में तालाब–निर्माण के लिए आवश्यक सभी गुण होने चाहिए।

सारणी 3: विभिन्न प्रकार की मिट्टियों के गुणों के आधार पर मत्स्य पालन तालाब निर्माण हेतु उनकी उत्तमता का निर्धारण

मृदा–गठन	पारगम्यता	बॉधने की क्षमता	दबाव–अवरोधक क्षमता	तालाब निर्माण के लिये उत्तमता
चिकनी मिट्टी		संतोषजनक से		सर्वोत्तम
(मृत्तिका)	अपारगम्य	साधारण	उत्तम	
मिट्टी	अपारगम्य	मन्द	उत्तम	उत्तम
दुमट	अर्धपारगम्य से	उच्च	संतोषजनक से	संतोषजनक
	अपारगम्य तक		अति न्यून	
रेतीली दुमट	अर्धपारगम्य से	सामान्य से	उत्तम से अति	न्यून
	अपारगम्य तक	उच्च	न्यून	
रेतीली	पारगम्य	अपेक्षित	उत्तम	न्यून
पीट	–	–	–	अति न्यून

की तली से न्यूनतम दूरी पर तभी होगा जब तालाब गहरे क्षेत्र में हो। यह ध्यान रखना चाहिए कि भूमिगत जल से तालाब की तली कम से कम 30–50 सेन्टमीटर तथा अधिक से अधिक 5.6 मीटर दूर हो, जिसका पानी के रिसाव से सीधा सम्बन्ध है। वह स्थल उचित माना जाता है जिस पर दिन भर सूर्य का प्रकाश पड़ता रहे, तथा जो घर के समीप हो ताकि मछलियों की सुरक्षा एवं रखरखाव अच्छी तरह हो सकें।

मत्स्य पालन के लिये तालाबों को आकार, उनकी गहराई और बंधों की ऊँचाई आदि पर ध्यान देना आवश्यक है। आर्थिक दृष्टि से 0.4 हेक्टेयर (एक एकड़) से 2 हेक्टेयर (5 एकड़) के तालाब उपयुक्त होते हैं। इन्हें संचय तालाब (stock ponds) कहते है। छोटे तालाब रखरखाव की दृष्टि से अधिक सुविधजनक होते है। 0.2 हेक्टेयर (आधे एकड़) से 0.4 हेक्टेयर के तालाब मछली की अंगुलिकाएँ (fingerling) पालने के लिये उपयुक्त होते हैं, जिन्हें अधिपोषण तालाब (rearing ponds) कहते हैं। 0.2 हेक्टेयर से कम आकार के तालाब मछली के डिंब, पोने एवं जीरे (spawnfry) पालने के काम में लाए जाते हैं, जिन्हें संवर्धन कुंड (nursery ponds) कहते हैं।

तालाब बनाने के सिद्धान्त

है तथा सूखने का भी भय रहता है, जिसके कारण मछलियों के मरने की संभावना रहती है तथा उनका विकास भी संतोषजनक नहीं होता है। अत्यधिक गहरे तालाबों के जल में पलने वाली मछलियों का विकास संतोषजनक नहीं होता, क्योंकि सूर्य का प्रकाश गहरे तालाब की तली तक प्रवेश नहीं कर पाता है जिसक फलस्वरूप अवांछनीय भारी गैसों का तली में थमें रहना एवं प्राकृतिक भोजन जैसे नितल जीवजात (benthos) के जीवन चक्र में अवरोध उत्पन्न होता है। तालाब की खुदाई एवं बंधों के निर्माण पर होने वाली लागत को न्यूनतम रखने के लिए ऐसा सवरूप (डिजाइन) तैयार करना चाहिये कि खुदाई द्वारा प्राप्त मृदा से बंध बन जाये और आवश्यकतानुसार तालाब भी गहरा हो सके। भारतवर्ष जैसे उष्णकटिबंधी देश में तालाब का जलस्तर 1 से 1.5 मीटर उपयुक्त पाया गया है। तालाबों की गहराई इसको ही आधार मानकर नियत की जाती है और जल – स्तर से ऊपर लगभग 0.5 मीटर ऊँचा बॉध रखना पड़ता है जो आपातकाल में बढ़ने वाले जल को धारण कर लेता है। तालाबों को बाढ़ के प्रभाव से बचाने के लिये बंधों के निर्माण से सावधानी बरतनी पड़ती है, जिसका विवरण आगे दिया गया है। मिट्टी निकालते समया यह ध्यान रखना जरूरी है कि तालाब में यदि एक किनारे (पूरब की ओर) गहराई 1 मीटर रखनी हो तो दूसरे किनाने (पश्चिम की ओर) 1.5 मीटर रखनी होगी अर्थात् प्रत्येक 10 मीटर की लम्बाई पर 5 सेंटीमीटर की ढलान देने से 100 मीटर लम्बे तालाब में 50 सेंटीमीटर की ढाल प्राप्त हो जायेगी। छोटे आकार के तालाबों की तली में ढलान देने से 100 मीटर लम्बे तालाब में 50 जल क्षेत्रों – नदियॉ, नहरें, जलाशय, भूमिगत झरने, नलकूप आदि– की उपलब्धता को भी प्राथमिकता दी जानी चाहिए, ताकि आवश्यकतानुसार जल की आपूर्ति की जा सके।

तालाब का निर्माण

तालाब निर्माण हेतू भूमि का चूनाव हो जाने पर प्रस्तावित आकार एवं आकृति के अनुसार सर्वप्रथम चारों कोनों पर खूँटी गाड़ दें। यथासंभव तालाब आयताकार बनायें और उसकी लम्बाई पूरब–पश्चिम दिशा में रखें। उसके बाद बंधों के आधार को नाप कर बाहर की तरफ खूटियॉ लगायें। इसके बाद मिट्टी काटने की कार्य प्रारम्भ करें। यदि मत्स्य पालक अपना तालाब 0.5 हेक्टेयर का बनाना चाहते हैं तो इस स्थिति में 5000 वर्ग मीटर (100 मीटर x 50 मीटर) के लिए 7656 वर्ग मीटर (116 मीटर x 66 मीटर भूमि की आवश्यकता होगी, जिसमें बंधों की ऊपरी सतह 2 मीटर चौड़ी, उनकी ऊँचाई धरातल से 2 मीटर तक बंधों का आधार 8 मीटर रखना होगा जिससे निर्मित बंधों में बाहरी ढलान की अनुपात 1:1 और अन्दर के ढलान का अनुपात 2:1 हो जायेगा। इस प्रकार तालाब 0.5 हेक्टेयर (5000 वर्ग मीटर) का तैयार हो

बॉध का निर्माण

बॉध बनाने में विशेष कौशल की आवश्यकत होती है। इसकी बनावट ऐसी होनी चाहिए ताकि यह जल द्वारा डाले गये दबाव को सह सके तथा रिसाव द्वारा जल बाहर न जा सकें। निर्माण हेतु चुनी गई भूमि पर

मिट्टी बैठाना, भेड़ों के झुड़ों को इस पर चलाना, ट्रैक्टर के पीछे कॉटेदार बेलन (sheep roller) लगाकर चलाना। इन सभी विधियों से मिट्टी भलीभॉति बैठ जाती है। इसके बाद पुनः मिट्टी निकालकर बंधों पर डालें। मिट्टी डालते समय दोनों किनारों से लगभग 30 सेंटीमीटर जगह छोड़ दें और जब लगभग 50 सेंटीमीटर मिट्टी चारों ओर बंधों पर पड़ जाये तब उसे अच्छी तरह दबायें। अन्त में चारों ओर लगभग 30 सेंटीमीटर छोड़कर बची हुई मिट्टी तालाब की ऐच्छिक गहराई से निकालकर बंधों पर डाल दें, बंधों की ऊपरी सतह को समतल करा दें, और अच्छी तरह दबाकर दृढ़ करा लें। इस प्रकार एक सीढ़ीनुमा बंध की रचना होगी।

एक या दो बरसात तक ऊपर से बंधों के कटाव द्वारा लाई गई मिट्टी को सीढ़ियॉ रोक लेगी, जिससे बंधों को वांछित ढलान प्राप्त हो जायेगी। नवनिर्मित बंध प्रारम्भ में दृढ़ नहीं होते है, एक या दो बरसात बाद ही ये अच्छी तरह बैठ पाते हैं तथा पानी में पहुँच कर उसकी जलधारण–क्षमता कम कर देती है जिससे आने वाले वर्षो में तली से गाद निकालने पर होने वाला व्यय अधिक हो जाता है और उत्पादकता पर कई वर्षों तक विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः तालाब बनाते समय इस बात का ध्यान रखें कि बंधों की ऊँचाई प्रारम्भ में वांछित ऊँचाई से लगभग 30 सेंटमीटर अधिक रखी जाये ताकि एक या दो वर्षों में इन्हें स्वतः वांछित ऊँचाई मिल जायें। दूसरे शब्दो में बंधो की प्रत्येक मीटर ऊँचाई पर 15 सेंटीमीटर तक की छूट दी जाये तो मिट्टी के पूरी तरह दब जाने पर वांछित ऊँचाई प्राप्त हो जाती है। मिट्टी को खिसकने से रोकने के लिए मिट्टी के प्रकार के आधार पर ढलान की व्यवस्था की जाती है। छोटे तालाबों– जैसे नर्सरी आदि में आधार और ऊँचाई का अनुपात 1: 1 से कम नहीं रखना चाहिये और बड़े आकार के संचय तालाबों में आधार और ऊँचाई का अनुपात 2.3 :1 रखने से बंधों की मिट्टी नहीं खिसकती है। यदि मिट्टी साधारण हो– जैसे रेतीली चिकनी – तो आधार 1–1.5 और ऊँचाई 1, दुमुट (हल्की भुरभुरी मिट्टी) हो तो आधार 2 और ऊँचाई 1, यदि मिट्टी रेतीली दुमट (हल्की बलुई) हो तो आधार 3 ऊँचाई 1 रखने की संस्तुति की जाती है। यदि मिट्टी हल्की बलुई (रेतीली दुमट) हो तो उस समय बंधों से रिसाव अधिक होने की संभावना रहती है जिसके कारण बंधों के टूटने का डर रहता है। साथ ही जल हकी मात्रा भी तालाबो में घटती रहती है। इस पर नियंत्रण रखने के लिये बंधों में अन्तरतम भित्ति (core) बनाने की आवश्यकता होती है जो मुख्यतया बंधों के ठीक मध्य से बनाई जाती है। इस अन्तरतम भित्ति से दोहरा लाभ यह होता है कि बंधों में बिल बनाकर रहने वाले जीव–जन्तुओं की रोकथाम हो जाती है। अन्तरतम भित्ति बनाने के लिये चिकनी मिट्टी को प्रयोग किया जाता है इसको बंध के ठीक बीच में आधार 1.5 और ऊचाई 1 के अनुपात में बांध उठाते समय आधार से ही प्रारम्भ करते है। जिसके दोनों किनारों पर साधारण मिट्टी के बांध दो–दो फुट की ऊँचाई पर ऊपर बतायी गयी विधि से दबाते हुए ऊपरी सतह तक ले जाते हैं। यदि संभव हो तो तालाब के बंधों के तल से लगभग 25–30 सेंटीमीटर नीचे से अन्तरतम भित्ति बनायें जिसमें रिसाव पर अच्छा नियंत्रण हे सके। बध को यदि अच्छी तरह न दबाया गया हो तो बंधों की अन्तरम

से लगभग 0.5 मीटर ऊपर रखे जाते है। बंधों की ऊपरी सतहों की चौड़ाई 1 मीटर से 3 मीटर तक रखी जाती है। यदि बंध की ऊँपरी सतह की चौड़ाई 1 मीटर रखनी हो तो इसका आधार 9 मीटर रखन पड़ेगा और आधार से ऊँचाई 2 मीटर होगी। ऐसी स्थिति में भी ढलान का अनुपातः 2:1 हो सकेगा। तालाबों की बाहरी ऐच्छिक ढलान का अनुपात 1 : 1 से 2 : 1 रखना चाहिये। बंधों के निर्माण के समय तल की समुचित व्यवस्था हेतु बंधों पर निवेशिका (inlet), जल निकास मार्ग (outlet) एव आप्लावी जल मार्ग (overflow channel) का निर्माण आवश्यक है।

निवेशिका / जल प्रवेश मार्ग

तालाब में जल आपूर्ति के लिए उसके बंध के ऊपरी हिस्से पर आगमन नलिका लगाई जाती है। छोटे तालाबों (नर्सरी तालाबों) में 15 सेंटमीटर में 15 सेंटीमीटर व्यास वाले तथा संचय तालाबों में 30 सेंटीमीटर व्यास वाली नलिका प्रयोग में लाई जाती है। यदि जल आपूर्ति ठीक से नही हो जाती हो तो एक से अधिक नलिकाओं की भी आवश्यकता पड़ सकती हैं। यदि जल किसी प्रकृतिक स्त्रोत – जैसे नदी, जलाशय आदि – से प्राप्त करना हो तो इन नलिकाओं में प्रवेश मुख पर जालियों की व्यवस्था की जाती है, जिसमें लगभग 20 से.मी की दूरी पर एक बड़े फंदे की ओर दूसरे मुख पर छोटे फंदे की जाली लगाकर आने वाले जल के साथ खरपतवार और अवांछनीय मछलियॉ कीड़े इत्यादि रोके जाते है। नलकूप से प्राप्त होने वाले जल को सीधे ही नालिका द्वारा ऊपर से छोड़ते है।

तालाब से बाहर निकली नलिका में L या T साकेट का प्रयोग करके इस निकास मार्ग को और भी अच्छा बनाया जा सकता है। L या T पर सीधी नलिका (upright pipe) तालाब के बाहर लगायी जाती है जिसका खुला सिरा तालाब में वांछित पानी की सतह से लगभग 3–5 सेटीमीटर ऊपर रखा जाता है। T साकेट के एक सिरे को डाट द्वारा बन्द रखते हैं। सीधे टुकड़े को एक लट्ठे के साथ बॉध दिया जाता हैं ताकि उपयोग न होने की स्थिति में यह खिसक कर नीचे न आ जाये और तालाब का पानी न निकल जाये। आवश्यकता पड़ने पर सीधी नलिका को खोल कर नीचे कर दिया जाता है और इच्छनुसार तालाब से पानी बाहर निकाला जा सकता है।

आप्लावी जल मार्ग

तालाब के जिस बंध पर नीचे जल निकास मार्ग का निर्माण किया गया है वहॉ एक नलिका लगाई जाती है, जिसकी ऊँचाई पानी की वांछित सतह से लगभग 30–50 सेटींमीटर ऊपर रखी जाती है निकास नली के व्यास जैसा होता है तथा इसके दोनों सिरों पर जाली लगा दी जाती है। इसका सुपरिणाम यह होता है कि आवश्यकता से अधिक जल बाहर निकल जाता है परन्तु मछलियॉ बाहर नहीं

आकस्मिक जल मार्ग

इसके निर्माण पर नाममात्र लागत आती है, परन्तु बचत अधिक होती है। बंधों की ऊपरी सतह से लगभग 30 सेंटीमीटर गहरी और 1 मीटर चौड़ी मिट्टी निकाल कर एक द्वार बना दें और एक चौखटा (लम्बाई 1 मीटर, चौड़ाई 20 सेंटीमीटर) पर जाली चढ़ाकर इस द्वार पर अच्छी तरह फंसा दें ताकि पानी के दबाव को यह भलीभांति सहन कर सकें इस आकस्मिक जल मार्ग से आपातकालीन स्थिति में जल बाहर निकल जाता है और मछलियॉ सुरक्षित बच जाती है।

वर्तमान वैज्ञानिक युग में जल निकास मार्ग, आप्लाविक जल मार्ग एवं आकस्मिक जल मार्ग को समन्वित कर जल नियन्त्रण मोंक (monk) का निर्माण किया जाता है।

जल नियन्त्रण मोंक

मोंक की रचना सीमेन्ट और लोहे के खांचे (channels) द्वारा की जाती है। इसे चीड़ या तुन की लकड़ी से भी निर्मित कर सकते हैं। एक अच्छे संचय तालाब में मोंक को एक लम्बी आलमारी या बक्से के आकार का बनाया जाता है। जिसमें लगभग 2 मीटर ऊँची और 60 सेंटीमीटर चौड़ी दो दीवारें अलग से डालते हैं या तख्ते खड़े करते है। इसका आधार और ऊपरी खुला भाग एक दूसरे से लगभग 1 मीटर दूरी पर रखते हैं। बंध की तली में इसकी सीमेन्ट और बजरी की नींव डाली जाती है। यदि मोंक लकड़ी का हो तो तीसरा तख्ता तली में जमा दिया जाता है जिसमें दोंनों तख्ते अच्छी तरह जड़ दिये जाते है। प्रारम्भ में ही दीवार डालते समय लोहे के खांचे दोनों ओर जमा दिये जाते हैं, जिसकी गहराई लगभग 4 सेंटीमीटर होती है। ऐसा करने से तख्तों को सुगमता से ऊपर नीचे किया जा सकता है।

जब मोंक बनकर तैयार हो जाता है इस समय इन्हीं खॉचों के द्वारा लकड़ी के 30 सेंटीमीटर लंबे तख्ते एक–एक करके छोड़ने से मोंक का द्वार बन्द हो जाता है। ध्यान रहे कि इन तख्तों की लम्बाई दोनों तरफ के खॉचों के बीच की दूरी के आधार पर निर्धारित की जाती है। इस प्रकार डाले गये तख्तों की दोनों कतारों के मध्य की दूरी–जो लगभग 20 सेंटीमीटर होती है– को खाद एवं मिट्टी द्वारा भर दिया जाता है जो ताकि मोंक से पानी बाहर न जा पायें। अंत में जालीदार चौखटा (तख्ता) इस मोंक में डाला जाता है सभी तख्तों के ऊपर रहता है। यह आप्लाविक और आकस्मिक जल मार्गों के कार्य का करता है, साथ ही वांछित जल स्तर को बनाये रखता है। जब तालाब से पानी निकालना हो याजल स्तर कम करना हो तो इन तख्तों को एक–एक करके निकालते है और उनके स्थान पर ऊपर वाले जालीदार तख्तें को नीचे सरकाते जाते हैं। इससे जल तो बाहर निकल जाता है, पर मछलियॉ सुरक्षित रहती हैं और अन्त में धीरे–धीरे पूरा जल बाहर निकालकर मछलियों को सुगमता से पकड़ लिया जाता है।

जब तालाब की खुदाई एवं अतिरिक्त रचना समाप्त हो जाये तब ऊपरी सतह की अच्छी उपजाऊ

खाद डालने की व्यवस्था

तलाब की उर्वरता बनाये रखने के लिये खाद डालने की समुचित व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके लिए तालाब के एक या एक अधिक कोनों पर खांचे निर्मित किये जाते हैं। खांचों की निर्माण तालाब के उथले भाग में करना उपयुक्त रहता है। यदि संचय–तालाब कड़ा हो तो 2 या 4 खांचों की आवश्यकता होती है, जिससे जल में आवश्यकतानुसार खाद घुलता रहे और प्रचुर मात्रा में प्राकृतिक मत्स्य भोजन तैयार होता रहे। इन खांचों का स्वरूप अर्धवृत्ताकार होता है, जिसका व्यास लगभग 2–3 मीटर रखते हैं। इसकी रचना बॉस या लकड़ी के लगभग 2 मीटर के टुकड़ों को तालाब में भलीभांति गाड़ कर करते हैं। आजकल इसके लिए प्लास्टिक के बड़े छेदों वाली जाली का भी प्रयोग किया जा रह है।

जल आपूर्ति का सिद्धान्त

तलाब के जल स्तर को निरन्तरता के आधार पर बनाये रखना जल आपूर्ति का सिद्धान्त है, जिससे मत्स्य उत्पादन अधिक से अधिक प्राप्त हो सके। इसके लिए प्राकृतिक जल स्त्रोंतों– जैसे नदियॉ, नहर, जलाशय आदि से खुली या बन्द नलिका के माध्यम से सुगमता से तालाब से पूर्व निर्मित प्रवेश मार्ग से जल प्रवाहित कराये। यदि नलकूप से जल प्राप्त हो तो उसे भी जल प्रवेश मार्ग से ही तालाब में डाले। इस बात का ध्यान रहे कि तालाब में आने वाले जल को प्रवेश मार्ग पर लगी जाली से छनकर ही जाने दें जिससे अवांछनीय जीव जन्तु तालाब में न जा सकें। यदि हम जल की आपूर्ति उन प्राकृतिक जल स्त्रोतों से की जाती है जिनमें प्रायः सैलाब आया करते हैं तो जल में गाढ़ता अधिक होती है एवं उसके साथ अवांछनीय मछलियॉ एवं उनके डिंब भी तालाबों में प्रवेश कर जाते हैं। इसके लिए यदि हम जल को एक जैविक निस्यंदय द्वारा छानकर तालाब में जाने दे तो उत्पादकता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इस निस्यंदक के निर्माण हेतु सर्वप्रथम सीमेट एवं बजरी का एक कक्ष बनाते हैं। जिसमें जल नीचे से ऊपर की तरफ छोटे–छोटे छिद्रों द्वारा गुटिकाओं, बजरी (gravel) और दानेदार रेत (sand) से छानने के पश्चात् कक्ष के ऊपरी भाग में बनी एक निकास –नलिका से जल प्रवेश मार्ग द्वारा तालाब में पहुँचता है। यह जल स्वच्छ एवं जीवाणु रहित होता है।

सजीव मत्स्य आहार

पी. शाहू, आर. एस. पतियाल, ए. बराट एवं विजय कुमार

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

प्रकृति के अन्य जीव जन्तुओं की तरह मछलियों को भी वृद्धि प्रजनन तथा जीवन चक्र को पूर्ण करने हेतु उर्जा की आवश्यकता होती है। जिसकी पूर्ति प्रतिदिन के भोजन से प्राप्त होती है। प्रकृति की संरचना में मछलियों के भोजन हेतु प्राकृतिक अवस्था में भोज्य पदार्थ उपलब्ध होते हैं। विभिन्न प्रकार की मछलियों के खाने की भिन्न–भिन्न आदतें होती हैं। कुछ मछलियां छोटे पौधों को खाकर जीवित रहती हैं। कुछ मछलियां पानी में रहने वाले सूक्ष्म जीव जन्तु खाती हैं जबकि कुछ मछलियां पौधों तथा जन्तुओं दोनों से पोषक पदार्थ ग्रहण करती हैं। इस तरह प्राकृतिक अवस्था में मछलियां विभिन्न प्रकार के पदार्थो जैसे कीड़े–मकोड़े लार्वा, मछलियां सड़े कार्बनिक पदार्थ, वनस्पति प्लवक, जन्तु प्लवक आदि को अपना भोजन बनाती है। मछलियों का आकार बढ़ने के साथ–साथ वह बढ़े प्लवकों तथा जलीय जीवजन्तुओं को भी अपना भोजन बनाती है।

जलकृषि विज्ञान के विकास के फलस्वरूप वैज्ञानिकों ने जीवित भोजन के रूप में विभिन्न मछलियों हेतु भिन्न जन्तुओं के लार्वा आदि का भी प्रयोग किया है। सामान्यताः प्रबंध विहीन तालाबों में मत्स्य आहार कमी के कारण उत्पादन बहुत कम होता है अतः उत्पादन हेतु तालाबों व पोखरों में उचित मात्रा में जन्तु व वनस्पति प्लवक होने चाहिए।

मछलियों का सामान्य भोजन प्लवक है। ये प्लवक बहुत ही छोटे पौधे या जीव जन्तु होते हैं जिनमें अपनी प्रचलन की क्षमता तो कुछ हद् तक ही होती है। अधिकांश रूप से यह जल के करैण्ट क साथ चलते है। मछलियों की अधिक पैदावार व उनके हष्ट पुष्ट होने के लिये तालाबों में प्लवक अथवा प्लैकटॉन का होना अति आवश्यक है। मत्स्य प्रबंधन की आधुनिक विधियों को अपनाकर प्लवकों क संबर्धन प्रचुर मात्रा में किया जा सकता है जिससे मछलियों की अधिक पैदावार मिल सके। मछलियों की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये तालाबों में उनकी मात्रा 2 मि0ली0 प्रति 50 लीटर जल में होनी चाहिए। यदि प्लवक एक मि0 ली0 के अधिक है तब यह समझना चाहिए कि भोजन पर्याप्त मात्रा में है और इससे कम हो तो मछली

व वनस्पतियां होती है जिसमें से अधिकतर को सूक्ष्मदर्शी की सहायता से देखा जा सकता है। मुख्य रूप से प्लवक दो प्रकार के होते हैं।

(अ) पादप प्लवक,

(ब) जन्तु प्लवक,

(अ) पादप प्लवक

पादप प्लवक सूक्ष्म वनस्पति होते हैं जिनके अन्दर क्लोरोफिल पाया जाता है। क्लोरोफिल की उपस्थिति में ये अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। उन्हें शैवाल भी कहते है। शैवालों के कई समुह होते हैं जिसमे से मुख्य है हरी शैवाल, भूरी एवं नील हरित शैवाल हरित शैवाल तालाबों में नाईट्रोजन एकवीकरण में भी सहायक होती है उदाहरण *क्लोरेल्ला, नौस्टॉक, एनावेना, चीटोसेरोस, स्पाइरूलिना* आदि।

(ब) जन्तु प्लवक

जन्तु प्लवक पानी में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव होते हैं उनमें चलने फिरने की क्षमता होती है। मुख्य जन्तु प्लवक समूह है प्रोटोजुआ, रोटीफैरा, क्लैडोसेरा एवं कोपीपोडा। उदाहरण *डेफिनया, मोयना, कैराटिला, साइक्लोप्स, ब्रैकियॉनस, यूग्लीना* आदि।

तालाबों में उचित प्लवक की मात्रा सुनिश्चित करने हेतु उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। उर्वरक के उपयोग का उद्देश्य पानी तथय मिट्टी में मत्स्य उत्पादक तत्वों एवं पोषक लवणों की कमी को पूरा करना है। कुशल मत्स्य पालक बनने के लिये यह जानना आवश्यक है कि तालाब के पानी तथा मिट्टी में कौन–कौन से तत्व एवं लवणों की कमी है और उसको किस उर्वरक द्वारा पूर्ण किया जा सकता है। यह कार्य केवल पानी एवं मिट्टी के रासायनिक विश्लेषणोपरान्त ही किया जा सकता है।

उर्वरक की मात्रा

साधारण तौर पर मत्स्य पालन हेतु उपयोग में आने वाले उर्वरक एवं रसायन निम्न मात्रा में उपयोग किये जाने चाहिए।

1) चूना–200 कि0ग्रा0/है0/वर्ष (स्वच्छ पानी के लिये)

2) कार्बनिक खाद– 10 से 20 टन/है0/वर्ष

3) अकार्बनिक खाद

अमोनियम सल्फेटः 100 से 250 कि0ग्रा0/है0/वर्ष

की खाद या गोबर) तथा अकार्बनिक उर्वरक (अमैनियम सल्फेट, सुपर फास्फेटस तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा का उपयोग निम्न ढंग से करना चाहिए।)

1) तालाब में चूने का उपयोग 200 कि0ग्रा0/है0 की दर से मत्स्य अंगुलिका संचय से पूर्व करें।

2) तालाब में चूने का उपयोग के पश्चात कार्बनिक उर्वरक (गोबर की खाद) की सम्पूर्ण मात्रा का 1/10 भाग अर्थात 1–2 टन प्रति है0 डालना चाहिए।

3) कार्बनिक उर्वरक गोबर की खाद के उपयोग के बाद अकार्बनिक खाद का (मिश्रण अमैनियम सुपर सल्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश) की सम्पूर्ण मात्रा का 1/10 भाग अर्थात 35 कि0ग्रा0 प्रति है0 का छिड़काव करना चाहिए।

4) यदि तालाब के पानी का रंग गहरा हरा हो जाए तो अकार्बनिक खाद का उपयोग करना बन्द कर देना चाहिए। लेकिन जैसे ही हरा रंग समाप्त होने लगे उर्वरकों का प्रयोग पुनः शुरू कर सकते हैं। प्रतिमाह उर्वरकों का 1/10 भाग उपरोक्त विधि द्वारा देते रहें।

उपयुक्त विधि द्वारा खाद का उपयोग करने के पश्चात पांच छः दिन के बाद सूक्ष्मजीव (प्लैकटन) अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं उसे जानने के लिये करीब 50 लीटर पानी के प्लैंकटन नैट में छानकर प्लवक इकट्ठा कर लें और उसे शीशे के टयूब में डाल लें। उसके बाद इसमें थोड़ा नमक डाल दें जिससे कि प्लैकटन मर कर नीचे बैठ जाएगें।

इस प्रकार हम प्लवकों की माप करके जल की उत्पादकता ज्ञात कर लेंगे।

पर्वतीय क्षेत्र की प्रमुख मत्स्य जैव विविधता एवं अभ्यागत प्रजातियों का समावेश

ए.के. सिंह

राष्ट्रीय मत्स्य आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, कैनाल रिंग रोड,
पो.आ. दिलकुशा, लखनऊ

मत्स्य विविधता एवं उनका संरक्षण आज न केवल वातावरण एवं परिवेश के दृष्टिकोण से आवश्यक है अपितु खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मध्य हिमालय में स्थित जल स्रोतों में छोटी बड़ी नदियों की कुल लम्बाई 2700 किमी. तथा जलाशयों का क्षेत्रफल 13,300 हेक्टेयर है। यहां अनेक सुन्दर प्राकृतिक झीलें भी पायी जाती हैं, जिनका क्षेत्रफल लगभग 659 हे. है। जम्मू एवं कश्मीर की शीतोष्ण मत्सय प्रजातियाँ राज्य में 27,781 किमी. लम्बी नदियों 0.46 लाख हेक्टेयर जलाशय तथा 250 से अधिक झीलों में वितरित है। ऐसी ही मत्स्य विविधता हिमालय के 3000 किमी. सदाबहार नदियों 775 किमी. मौसमी नदियॉ 80,000 हेक्टेयर जलाशय एवं 2000 हेक्टेयर झीलों में बिखरी हुयी है। पर्वतीय क्षेत्र की मत्स्य जैव विविधता विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में लगभग 252 आंकी गयी है। स्थानीय मत्स्य प्रजातियों में, प्रमुख रूप से स्नोट्राउट की प्रजातियाँ (40) जिसमें साइजोथोरेक्स की एक एवं साइजोथोरैक्थीस की आठ प्रजातियां तथा माहसीर की तीन प्रजातियां, *टौर प्युटिटोरा, टौ. टौर एवं टौ. चिलीनायडिस,य लेबियो की तीन प्रजातियां, लेबियो डेरो, ले. डायोचिलस* एवं *ले. गोनियस, नीमैचिलस* की नौ प्रजातियॉ, बैरिलियस की छः प्रजातियां, ग्लिपटोथोरैक्स की सात प्रजातियां तथा *स्थुउइकिनिस* की कुछ प्रजातियां पायी जाती हैं (मदन मोहन एवं सहयोगी, 2003)। शीतजल की प्रमुख मत्स्य प्रजातियों की उपलब्धता का विवरण तालिका 1 में

तालिका–1 पर्वतीय क्षेत्र की प्रमुख मत्स्य प्रजातियों की उपलब्धता

क्र.सं.	प्रमुख मत्स्य प्रजातियां	उपलब्धता (प्रतिशत में)
1.	स्नोट्राउट (साइजोथोरक्स एवं साइजोथोरैक्थीस)	40

6.	निमोचिलस	05
7.	कैट फिष, ग्लिप्टोथोरैक्स आदि	15
8.	अन्य मछलियां	05
	कुल	**100**

दिया गया है। इन स्थानीय प्रजातियों के अतिरिक्त, विदेशी या अभ्यागत मछलियों में, *ट्राउट, चाइनीज कार्प, लार्वीभक्षी गैम्बूसिया* गप्पी तथा अन्य सजावटी रंगीन मछलियां, प्रमुख रूप से पायी जाती हैं। यहां की स्थानीय मत्स्य प्रजातियां, भारत की कुल मत्स्य प्रजातियों (2182) का 3.32: हैं, जिनका स्थानीय मत्स्य रोजगार एवं खाद्यान्न में महत्वपूर्ण योगदान है।

अभ्यागत मत्स्य प्रजातियों का समावेश

(अ) मिरर कार्प एवं कामन कार्प

अन्य राज्यों की तरह, पर्वतीय राज्यों में भी कई प्रचलित अभ्यागत/विदेशागत मत्स्य प्रजातियों का प्रवेश हो चुका है (तालिका 3) यह विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियाँ हैं जिनका समावेश पर्वतीय क्षेत्रों में वर्ष 1947 मे हुआ था। इन प्रजातियों के बीज का उत्पादन वर्तमान में उत्तरांचल के नैनीताल, पिथौरागढ़, अल्मोड़ा, ऊधम सिंह नगर, देहरादून, चमोली एवं उत्तरकाशी में किया जा रहा है। इनके अतिरिक्त, स्केल कार्प भी मत्स्य पालन में अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध है। इन मत्स्य प्रजातियों के विकास के लिये राज्य में गंगोरी (उत्तरकाशी), वैराग्ना (चमोली), भीमताल, मनान (अल्मोड़ा), वेंतवाली मण्डी (देहरादून) एवं नैनी–सैनी (पिथौरागढ़) में हैचरी की स्थापना हो चुकी है। इसी तरह अन्य पर्वतीय राज्यों में भी यह मछली छा गयी है (लाकड़ा आदि 2008)।

(ब) ट्राउट

विदेशी ट्राउट मछलियां सर्वप्रथम अंग्रेजी शासनकाल में सन् 1906 में लाई गई थीं जिन्हें कश्मीर में सफलतापूर्वक पाला गया था (सिंह, 1998य लाकड़ा एवं सहयोगी, 2006)। उत्तरांचल में सर्वप्रथम सन् 1910 में ब्राउन ट्राउट के 10 हजार निशेचित बच्चे कश्मीर से लाये गये थे, जिन्हें नैनीताल स्थित भवाली हैचरी में रखा गया था। वर्तमान में तलवाड़ी (चमोली), कल्द्यानी (उत्तरकाशी) एवं वैराग्ना (चमोली) में इनका सफलतापूर्वक उत्पादन किया जा रहा है। यद्यपि भारत में छः किस्म की विदेशी ट्राउट मछलियां, आखेट के उद्देश्य से लाई गई थी किन्तु उत्तरांचल में ब्राउन ट्राउट (*साल्मो ट्रूटा फारियो*) तथा रेन्बो ट्राउट

वेरीनाग, ऐलन नाओबुध तथा अन्य धाराओं को ट्राउट धाराओं के रूप में 1911–193 के मध्य स्थापित किया गया था। राज्यधीन मछलियों के 18 अण्डजनन स्थल (हैचरी) श्रीनगर, अन्नतनाग, पुलवामा, बारमूला बड़गांव डोडा, राजौरी और कारगिल जिलों में स्थित है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश में 600 किमी. ट्राउट जलक्षेत्र उपलब्ध है। वर्ष 1980 के दशक तक विभागीय ट्राउट बीज फार्म केवल नदियों में संग्रहण के लिये बीज उत्पादन तक सीमित थे। प्रदेश का सतलुज, व्यास रावी, एवं उनकी सहायक नदियों के ऊपरी भागों को ट्राउट जलों की श्रेणी में रखा गया है। इसी प्रकार चन्द्रताल (लाहौल स्पीत), परासर (मण्डी) एवं नाको (किनोरे) में ट्राउट एवं मिरर कार्प की अंगुलिकाओं का संग्रहण किया गया है।

(स) सिल्वर कार्प

हिमाचल प्रदेश में सिल्वर कार्प पालन द्वारा मत्स्योत्पादन बढ़ाये जाने का एक बड़ा उदाहरण है। इस प्रजाति द्वारा गोविन्दसागर जलाशय के मत्स्योत्पादन को बड़े स्तर पर बढ़ाया गया है (सिंह, 2004य लाकड़ा एवं सहयोगी, 2006) । आज यह प्रजाति सम्पूर्ण उत्तर पर्वतीय क्षेत्र में मत्स्य पालन का प्रमुख हिस्सा बन गयी है। गोविन्द सागर में स्थानीय प्रजाति *कतला कतला* का उत्पादन, सिल्वर कार्प के कारण, सिमट कर रह गया है और सम्पूर्ण जलाशय की उत्पादकता में सिल्वर कार्प की ही अधिकता है। जम्मू कश्मीर एवं उत्तरांचल के पर्वतीय क्षेत्रों में भी इस मछली का पालन किया जा रहा है। वहां के प्रमुख जलाषयों एवं झीलों के मत्स्योत्पादन में, इस मछली की महत्वपूर्ण हिस्सेदारी है।

(द) थाई मांगुर

यह वास्तव में अफ्रीकी मूल की मछली है जिसे, पड़ोसी देशों से चोरी छिपे लाया गया है। मैदानी क्षेत्रों में व्यापक फैलाव के उपरान्त, अब इसे पर्वतीय क्षेत्रों के निचले भाग इसका संवधन किया जा रहा है। इस मछली की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह है कि यह कम समय में अत्यधिक वृद्धि अर्जित करने की क्षमता रखती है। यह एक मांसाहारी मछली है अतः यह स्थानीय मत्स्य प्रजातियों को नुकसान पहुंचाती है सिंह, 1998) (लाकड़ा आदि, 2008)।

तालिका 1 उत्तरांचल में अभ्यागत एवं प्रत्यारोपित मत्स्य प्रजातियां

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम	प्रवेश का वर्ष
	अ. अभ्यागत प्रजातियॉ		
1.	*साइप्रिनस कार्पियो कम्यूनिस*	स्केल कार्प	1947
2.	*साइप्रिनस कार्पियो स्पेकलोरिस*	मिरर कार्प	1947

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम	प्रवेश का वर्ष
6.	*हाइपोथ्थैलमिक्थिस मालिट्रिक्स*	सिल्वर कार्प	1995
7.	*एरिस्टिक्थिस नाबिलिस*	बिगहेड	2000
8.	*कलेरिएस गैरीपाइनस*	थाइ मांगुर	1999
9.	*आन्कोरिंकस माइकिस*	रेन्बो ट्राउट	1910
10.	*साल्मों ट्रूटा फेरिया*	ब्राउन ट्राउट	1910
11.	*गैम्बुसिया एफिनिस*	मास्किटे फिश	अज्ञात
	ब. प्रत्यारोपित प्रजातियॉं		
12.	*लेबियो रोहिता*	रोहू	1996
13.	*कतला कतला*	कतला	1996
14.	*सिरहाइनस मृगला*	नैनी	1996

तालिका 2 उत्तरांचल में स्थापित विभिन्न हैचरियों में अभ्यागत मत्स्य प्रजातियों के बीज उत्पादन की स्थिति।

राज्य	राज्य सरकार के मत्स्य प्रक्षेत्र	मत्स्य प्रक्षेत्र की संख्या
जम्मू एवं कश्मीर	40	14
हिमाचल प्रदेश	5	5
उत्तराखंड	4	3
सिक्किम	5	5
अरुणाचल प्रदेश	3	2
तमिलनाडु	1	1
केरल	2	2

3.385 लाख कामन कार्प एवं 0.003 लाख गोल्डफिश की अंगुलिकायें उपलब्ध कराके, संसाधनों में संचित की जा चुकी हैं (तालिका–2)। उत्तरकाशी से 15 किमी. की दूरी पर कल्याणी, में ब्राउन ट्राउट व रेन्बो ट्राउट की अंगुलिकाओं को असीगंगा, डोडा ताल तथा भागीरथी के उपरी भागों में छोड़ा जाता है। तलवाड़ी एवं वैराग्ना हैचरी से उत्पादित अंगुलिकाओं को भी, इसी तरह नदी तटों पर छोड़ा जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार अंगुलिकाओं के रूप में संग्रहित मत्स्य प्रजातियॉं, मत्स्य उपज के रूप में बहुत कम ही पकड़ी जाती हैं।

कामन कार्प की तीनों उपप्रजातियां (साइप्रिनस कार्पियो, मिरर कार्प तथा लेदर कार्प) जम्मू कश्मीर की अधिकतर झीलों में व्यावसायिक मात्स्यिकी के रूप में आज बड़ा योगदान दे रही है। प्रदेश के ऊपरी भाग की कुछ झीलों में उनका उत्पादन 70–80% है और ये स्थानीय मात्स्यिकी की गिरावट के लिये उत्तरदायी बन गये है। हिमाचल प्रदेश के जलाशयों में भी मिरर कार्प, सिल्वर कार्प रोहू, कतला, मृगल एवं ग्रास कार्प के बीज का संग्रहण किया जाता है। भारतीय मेजर कार्प तथा मिरर कार्प का यहां अच्छा विकास हुआ परन्तु सिल्वर कार्प का उत्पादन वर्ष 1978 के अल्प उत्पादन (555 किग्रा.) वर्ष 2002–2003 में बढ़कर 10,23000.0 किग्रा हो गया जो कुल उत्पादन (12,02000.0 किग्रा.) का 85% हो गया है। हिमाचल के व्यास नदी की ब्राउन ट्राउट एवं महाशीर मछलियां, मत्स्य आखेट प्रेमियों के लिये आकर्शण का केन्द्र रही है मलाली से और तक व्यास एवं इसकी सहायक नदियों में ब्राउन ट्राउट एवं महाशीर 50–50% थी परन्तु आज व्यास की सहायक नदी सैन्य में ब्राउन ट्राउट के एक छत्र समुदाय है।

उपसंहार

पर्वतीय क्षेत्रों में स्थानीय मत्स्य प्रजातियों के उचित रखरखाव, विकास एवं उपयोग के लिये यह नितांत आवष्यक है कि विभिन्न सरकारी संस्थाये, उचित प्रसार एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों द्वारा, विदेशी मछलियों के दुष्प्रभावों एवं स्थानीय मत्स्य संसाधनों के संरक्षण के महत्व के बारे में, निरन्तर मत्स्यपालकों को अवगत करायें ताकि मत्स्यपालक एवं सरकारी तथा गैर–सरकारी संस्थाओं की भागीदारी तथा सहयोग से, राज्य में मत्स्य विकास का कार्यक्रम सफल हो और पर्वतीय क्षेत्रों में अधिक से अधिक टिकाऊ मत्स्य उत्पादन प्राप्त हो सके।

स्थानीय मत्स्य सम्पदा के वर्तमान स्थिति की जानकारी जन–मानस तक पहुंचाने की आवश्यकता है ताकि उनके संरक्षण हेतु, स्थानीय लोगों का सहयोग प्राप्त हो सके। टिकाऊ संवर्धन एवं मत्स्य उत्पादन की वृद्वि के लिये व्यवहारिक तकनीकी ज्ञान आवश्यक है। स्थानीय मत्स्य प्रजातियों के साथ–साथ नयी (अभ्यागत) अथवा प्रत्यारोपित मत्स्य प्रजातियों का, मत्स्य पालन में समावेश कर, मत्स्य उत्पादन बढ़ाने के लिये भी नये प्रयास प्रचलित हो रहे हैं। इस प्रकार नयी प्रजातियों (अभ्यागत एवं प्रत्यारोपित) के समावेश

कि यह मछली पर्वतीय क्षेत्र की जलीय परिस्थितियों में न केवल फली–फूली है अपितु उनका कुल उत्पाद का 70% योगदान रहा है जो सर्वाधिक उत्पादन है। कामन कार्प की उपस्थिति मूल्यवान स्थानीय असेला मछली की प्रजातियों के लिये निरन्तर खतरनाक साबित हुयी है। इसी तरह अब कामन कार्प की बढ़ती जनसंख्या में महाशीर मछली को नुकसान पहुचाँना शुरू कर दिया है और अब ये अधिकतर जलस्रोतों से विस्थापित होती जा रही है।

संदर्भिका

1. लाकड़ा, डब्लू.एस., रेहाना आबिदी, ए.के. सिंह, गौरव राठौर, नीरज सूद एवं टी. राजा स्वामीनाथन (2006). फिश इन्ट्रोडक्शन्स क्वारन्टाइन, इन्डियन पर्सपेक्टिव। रा.म.आ.सं.ब्यूरो, लखनऊ, 178 पृष्ठ।
2. सिंह, ए.के. (1998) विदेशी खाद्य मछलियां: वरदान या अभिशाप रा.म.आ.सं.ब्यूरो, लखनऊ, 50 पृष्ठ।
3. मदन मोहन, सी.बी.जोशी एवं अमित कुमार (2003) पर्वतीय क्षेत्रों में मत्स्य अनुसंधान एवं विकास। राष्ट्रीय शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केन्द्र, भीमताल 119 पृष्ठ।
4. सिंह, ए.के. (2004). एक्वाकल्चर डायवर्सिफिकेशन एण्ड स्पेशीज एनहान्स मेंटः प्रॉब्लम्स एण्ड पर्सपेक्टिव्स। जूलोजी एण्ड ह्यूमन वेल्फेयर संपादक अशोक वर्मा, इलाहाबाद, पृष्ठ 252–261।
5. लाकड़ा, वजीर एस, ए. के. सिंह एवं एस. अय्यपन (2008). फिश इन्ट्रोडक्शन इन इंडिया : स्टेटस, प्रास्पेक्ट्स एवं चैलेन्जेज। नरेन्द्रा प्रकाशन नई दिल्ली 303 पृष्ठ।

शीतजल मछलियों के प्रमुख रोग - लक्षण एवं उपचार

सुरेश चन्द्रा, अमित पाण्डे एवं सुमन्त कुमार मलिक

छीड़ापानी प्रायोगिक मत्स्य प्रक्षेत्र, शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय,
चम्पावत 252623 (उत्तराखण्ड)

देश के पर्वतीय राज्य विषम, कठिन भौगोलिक परिस्थितियों के साथ–साथ संवेदनशील पारस्थितिकी तंत्र के चलते भी अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाते हैं। अधिकतर खेती वर्षा आधारित है। आजीविका निर्वहन हेतु अन्य कृषि व्यवसायों के साथ–साथ मछली पालन कार्यकलापों में भी लोगों का रूझान बढ़ रहा है। इन क्षेत्रों में सामान्यतः वर्ष पर्यन्त पानी का तापमान 20°c से कम रहता है। अतः शीतजल में जीवित रहने एवं बढने वाली, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प, कौमन कार्प, ट्राउट, महाशीर एवं स्नो ट्राउट आदि प्रजातियों का उपयोग किया जाता है। मत्स्य पालन दौरान अनेक तरह के स्वास्थय सम्बन्धित समस्यायें मछलियों में देखी जाती हैं। शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय, इस तरह की समस्याओं की सही पहचान कर उनके उपचार हेतु विधियॉ विकसित कर मत्स्य कृषकों तक पहुॅचाने का कार्य कर रहा है। इस लेख में परजीवियों द्वारा उत्पन्न होने वाली बीमारियों का उल्लेख किया गया है। सामान्यतः रोगों का अतिक्रमण उपस्थित रोगाणु, प्रदुषित जलीय वातावरण द्वारा उत्पन्न तनाव एवं इनके संपर्क में रहने वाली मछलियों की संवेदनशीलता पर निर्भर करता है।

रोगग्रस्त मछलियों के सामान्य लक्षण

1. मछलियों का तालाब के किनारे पर एवं सतह पर बार–बार आना।
2. उल्टा–सीधा चक्कर लगाना एवं सुस्त होकर धीरे–धीरे पानी में तैरना।
3. कुछ आवाज करने पर भी मछलियों की सतह पर आने रहना।
4. मछलियों को दिये गये खाद्य का ग्रहण न करना।

- मछली के ऊपर या पंखों के निचे लाना–निशान अथवा घाव दिखाई देना।
- त्वचा के उपर सफेद या काले रंग की राई के दाने के बराबर, उबार आदि दिखाई देना।
- शल्कों का निकलना पेट का फूलजाना, शल्कों के बीच में द्रव्य जमा होना।
- गलफडों का टूटना, सड़ना एवं उनके उपर सफेद रंग के पदार्थ का जमाव दिखना।
- पंखों का सड़ना टूटना।
- मछलियों का लम्बाई के सपेक्ष कमजोर होना।
- मछलियों के मुँह की थुथनी का आकार असमान्य होना अथवा बढ़ना।
- गलफड़ों का अधिक दिखाई देना।
- जख्मों, शरीर के गलफड़ों के ऊपर या पंखों में रूई जैसी चीज का जमा होना।

मछली के शरीर में होने वाले विकार जिनमें परजीवी या जीवाणु की प्रायः कोई भूमिका नही होती है, वरन् अन्य जलीय परिवेश या आहार सम्बन्धित कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इनसे होने वाली बीमारियाँ निम्नवत् हैं :

1.1 ऑक्सीजन की कमी एवं कार्बन डाइऑक्साइड गैस की अधिकता द्वारा उत्पन्न विकार

लक्षण : ऑक्सीजन की कमी से मछली सतह पर आ जाती है। काफी बेचैनी वाले लक्षण मछलियों में प्रकट होते हैं। शरीर में ऑक्सीकृत खून की सप्लाई असमान्य हो जाती है जिससे मछलियाँ मरनी शुरू होती हैं। सामान्यतः मत्स्यपालन टैंकों एवं तालाबों में ऑक्सीजन की कमी एवं कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा आवश्यकता से अधिक होने पर ट्राउट, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प एवं स्नो ट्राउट मछलियॉ अधिक प्रभावित होती हैं। कौमन कार्प चूँकि तालाब की तली पर रहने की आदि होती हैं, इसीलिये इन पर प्रभाव अन्त में होता है।

कारण : अत्यधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, तालाब में बहुत अधिक बायोमास (Biomass), नीली हरी शैवाल की अधिकता तथा तापमान में वृद्वि इत्यादि प्रमुख कारण है। यदि तालाब में 7–8 मिग्रा/ली ऑक्सीजन हो तो कार्बन डाइऑक्साइड की 24 मिग्रा/ली मात्रा भी हानिकारक नहीं होती है। इसके विपरीत यदि ऑक्सीजन बहुत कम हो तो थोड़ी सी मात्रा भी नुकसानदायक होती है।

रोकथाम : तालाब के पानी में 200 किग्रा/हे के हिसाब से बुझा हुआ चूना देना चाहिए।

- तालाब के पानी को बाँस के डण्डों द्वारा पीटना चाहिए जिससे वातावरण की ऑक्सीजन तालाब में मिल जाय।

- खाद्य देना कुछ दिन के लिये बन्द कर देना चाहिए।
- यदि वायुकरण करने के साधन हों तो वायुकरण की व्यवस्था करनी चाहिए।
- हमेशा घने बादल एवं उमस वाले दिनों में एवं गर्मी की प्रथम वर्षा के समय अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। इन्ही दिनों में इस प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती हैं।

1.2 स्पौन में पेट फूलने की बीमारी

लक्षण : मछलियों के आमाशयिक भाग पर गैस के बुलबुले या उदरीय भाग पर कुछ गैस के बुलबुले, पेट का बाहर निकलना, कभी–कभी आँखें फूल जाना, गलफड़ों का लाल–लाल चमकदार होना आदि प्रमुख लक्षण हैं। सूक्ष्मदर्शी यन्त्र में पूरी मछली देखने से पता चलता है कि पेट के अन्दर भी गैस होती है तथा गलफड़ों के ऊपर भी गैस के बुलबुले दिखाई देते हैं।

कारण : यह जीरों और स्पान का रोग है। वायुमण्डलीय एवं जलीय गैसों के दबाव की अधिकता से इस रोग की आशंका बढ़ जाती है। पानी के तापमान का बढ़ना तथा पानी में वायु की अधिकता इसमें सहायक होते हैं। कभी–कभी तालाब में नीली हरी शैवाल की अधिकता भी एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक बन जाती है।

प्रभाव : जब गैस के बुलबुले छोटी मछलियों के शरीर में अधिक हो जाते हैं तो सूक्ष्म रक्त नलिकाओं के रक्तप्रवाह में रूकावट उत्पन्न हो जाती है, जिससे शरीर में ऑक्सीजन मिश्रित रक्त की कमी हो जाती है। फलतः मछलियाँ मरने लगती हैं। कभी–कभी इससे बहुत अधिक संख्या में मछलियाँ मर जाती हैं।

रोकथाम : नीली हरी शैवाल यदि तालाब के पानी में उपस्थित हैं तो खाद्य देना बंद कर देना चाहिए। तालाब के पानी में इस दौरान पम्प इत्यादि द्वारा पानी नहीं भरना चाहिए। यदि सम्भव हो तो तालाब की सतह को सूर्य की रोशनी से बचाना चाहिए। यह कार्य तैरने वाले पौधों से किया जा सकता है। इससे नीली हरी शैवाल मर जाती है।

1.3 विषैली अमोनिया गैस द्वारा उत्पन्न रोग

लक्षण : यह सभी उम्र की मछलियों को प्रभावित करती है। इससे गलफड़े बहुत अधिक लाल हो जाते हैं। गलफड़ों का कुछ भाग टूटना, लाल–लाल घाव होना, रक्त निकलना इत्यादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। मछली के शरीर के अन्दर के अंगों जैसे यकृत, गुर्दा एवं आमाशय के आस–पास रक्त दिखाई देता है। इसे गलफड़े की बीमारी के नाम से जाना जाता है।

कारण : तालाबों के तल पर आवश्यकता से अधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना, बहुत अधिक संख्या में तालाबों में मछलियों का संवर्धन, खाद्य का तालाब में जमा होना, पानी निष्कासन की अव्यवस्था

कार्य करने से बढ़ जाते हैं तथा शरीर में ऑक्सीकृत रक्त की कमी हो जाती है। पी–एच 7 पर 1.39 मिग्रा/लीटर अनायनीकृत अमोनिया विषाक्त होती है। इसकी विषाक्तता तालाब के पी–एच एवं तापमान पर निर्भर करता है। अधिक पी एच एवं कम तापमान होने पर यह ज्यादा विषाक्त होती है।

रोकथाम : तालाब का पानी पम्प या निकास द्वार से निकालकर ताजा एंव साफ जल भरना चाहिए।

- खाद्य देने मे कमी कर देनी चाहिए विशेषकर अधिक प्रोटीनयुक्त खाद्यों पर रोक लगाना लाभप्रद होता है।
- तालाब का पानी किसी प्रयोगशाला में जाँच के लिये अवश्य दे देना चाहिए। विषाक्तता के आधार पर ही प्रबन्धन करना उपयुक्त होता है। अमोनिया का स्तर तालाब में बहुत अधिक घटता बढ़ता रहता है।
- पी–एच वृद्वि के साथ अमोनिया का स्तर भी बढ़ता जाता है तथा अधिक अमोनिया घातक सिद्व होती है। अतः इस दौरान ऐसी कोई भी चीज तालाब में न मिलाएँ जो पी–एच में वृद्वि कर दे।

1.4 हाइड्रोजन सल्फाइड गैस से उत्पन्न विकार

लक्षण : इस गैस द्वारा बहुत साफ कोई लक्षण मछली के ऊपर नहीं दिखाई देता है तथापि तालाब या हैचरी के पानी में सड़े अण्डे की तरह गन्ध आने से इस गैस की उपस्थिति का अनुमान किया जा सकता है। कभी–कभी हैचरी में इस गैस की अधिकता से स्पान की भारी संख्या में मृत्यु हो जाती है।

कारण : बहुत अधिक गहराई वाले तालाब, जलाशय या ऑक्सीजन रहित जल संसाधनों में यह गैस पैदा होती है। कार्बनिक पदार्थों का अधिक जमा होना भी इसका एक प्रमुख कारण है। हैचरी में इस प्रकार की समस्या का मुख्य कारण, अण्डों का कवच एवं अनिशेचित अण्डों का नीचे बैठ जाने पर सड़ना है जिससे इस प्रकार की गैस पैदा होती है जो स्पान एवं अण्डों के लिये हानिकारक होती है।

प्रभाव : चूँकि इस गैस की उपस्थिति से साँस लेने के लिये आवश्यक ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और मछलियाँ मरने लगती हैं। इसकी विषाक्तता मछलियों के उम्र पर निर्भर करती है। स्पान एवं अण्डों में 0.006 मिग्रा/लीटर की मात्रा भी हानिकारक होती है।

रोकथाम : तालाब या हैचरी के पानी में से कार्बनिक पदार्थों अथवा सड़े–गले अण्डों को बाहर करना उपयोगी होता है।

- हैचरी में यदि इस प्रकार की समस्या हो तो पानी में 1–2 मिग्रा/लीटर पोटेशियम परमैंगनेट मिलाना लाभप्रद होता है।
- तालाब में 200 किग्रा/हे की दर से चूने का प्रयोग लाभदायक होता है।

में ऑक्सीजन प्रचुरता के बावजूद भी मछलियाँ तनावग्रस्त होकर पानी की सतह पर बैचेन होकर तैरती दिखाई देती हैं। रक्त में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है।

प्रभाव : जब पानी में उपलब्ध नाइट्राइट रक्त में मिलता है तो रक्त के हीमोग्लोबिन का उपस्थित हीम लौह फेरस रूप से फेरिक रूप में बदल जाता है जिसे मिथोमोग्लोबिन कहते हैं। इस परिवर्तित रक्त के रूप से मछलियों के रक्त की ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। फलतः ऑक्सीजन मछली के विभिन्न भागों में नही जा पाती है और धीरे–धीरे मछलियाँ मरने लगती हैं।

कारण : तालाब के तलछट (कीचड़) में मौजूद नाइट्रेट के अवकरण के फलस्वरूप नाइट्राइट बनता है। कभी–कभी नाइट्रीफिकेशन की प्रकिया में कुछ असन्तुलन हो जाने के कारण नाइट्राइट जमा होने लगता है और तालाब में इसकी मात्रा बढ़ने लगती है। 4.6 मिग्रा/लीटर नाइट्राइट की मात्रा से मछलियाँ मर जाती हैं।

रोकथाम : तालाब में कैल्सियम क्लोराइड या सोडियम क्लोराइड मिलाने से इसकी विषाक्तता क्षीण हो जाती है। इसके अलावा ऑक्सीजन की कमी से भी विभिन्न परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। ऑक्सीजन की उचित मात्रा से कई अन्य प्रकार की बीमारियों पर नियंत्रण पाया जा सकता है। अधिकतर विकारों की वजह तालाब के पानी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में अधिक बदलाव होना है। इनमें से प्रमुख तापमान, कार्बनिक पदार्थ, अधिक जनसंख्या में मछलियों का संचयन एवं तनाव आदि है। अतः समुचित प्रबन्धन इसका एक मात्र उपाय है।

संक्रामक बीमारियाँ

इस प्रकार की बीमारियों की जड़, परजीवी या जीवाणु होते हैं। लेकिन तालाब के पानी के भौतिक एवं रासायनिक गुणों की भी इसमें सहभागिता होती है जो इन हानिकारक जीवाणुओं के वृद्वि में सहायक होते हैं।

2.0 परजीवी बीमारियाँ

इसमें प्रोटोजोआ, कृमि वर्ग एवं क्रस्टेशिया वर्ग के परजीवी मुख्यतः मछलियों को नुकसान पहुँचाते हैं। ये परजीवी मछली के शरीर के ऊपर, गलफड़ों में या शरीर के भीतरी अंगों, जैसे– आँत, यकृत, वृक्क आदि के ऊपर या अन्दर रहते हैं। इनके हानिकारक प्रभाव से मछलियों की वृद्वि रूक जाती है और धीरे–धीरे मृत्यु होने लगती है। उचित मात्रा में खाद्य देने के उपरान्त भी बढ़ती नहीं हैं। अतः विभिन्न प्रकार के परजीवियों से होने वाली बिमारियों के लक्षण तथा उपचार की जानकारी होना आवश्यक है। मुख्य परजीवी बीमारियों के लक्षण, कारण और रोकथाम के उपाय क्रमशः दिये गये हैं।

2.1 खुजली का रोग

कारण : एक्थोपिथिरियस एक प्रोटोजोन परजीवी है जो इस बीमारी का कारण है। जीरे एवं अंगुलिकाओं का यह एक मुख्य रोग है। यह सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के द्वारा ही देखा जा सकता है। बीमार मछलियों की त्वचा एवं पंखों के उपर 0.5–1.0 मिमी. आकार के सफेद दाने जैसी अत्यन्त छोटी–छोटी ग्रन्थियाँ दिखाई पड़ती हैं।यह 12 से 18 घंटे की अवधि में 1,000 तक नये परजीवियों को जन्म देता है। ये पूरे तालाब में घूमते रहते हैं और मौका मिलते ही मछली के शरीर पर चिपक कर लाल रक्त कणिकाओं को खाते हैं। इनके संक्रमण से मछलियों में रक्त की कमी हो जाती है। फलतः रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है, जिससे शरीर की श्वास लेने की शक्ति कम हो जाती है।

इक्थोओपिथिरियस नामक परजीवी द्वारा उत्पन्न इसमें मछलियों में खुजलाहट के साथ शरीर के उपर दाने पैदा हो जाते हैं। यह परजीवी 12–18 घण्टे की अवधि में लगभग 1000 तक नये परजीवियों को जन्म देता है और ये तालाब में परपोशी की तलाश में घुमते रहते हैं। मछली की त्वचा एवं रक्त कोशिकाओं को खाकर ये परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं तथा सफेद दाननुमा ग्रन्थियों से बाहर निकल जाते हैं।

रोकथाम : मछलियों को 2–3% नमक के घोल में 2–3 मिनट तक डुबाकर तालाब में छोड़ना काफी लाभप्रद होता है। यह किया यदि एक सप्ताह तक की जाय तो इन परजीवियों से छुटकारा पाया जा सकता है। 300 से 500 किग्रा/हे चूना देना भी लाभप्रद होता है। जलीय तापमान के बदलाव से भी इनके नियन्त्रण में मदद् मिलती है।

2.2 ट्राइकोडिनोसिस

लक्षण : यह भी जीरों एवं अंगुलिकाओं की बीमारी है। त्वचा, पंखों एवं गलफड़ों के ऊपर में रहते हैं। गलफड़ों का लाल दिखाई देना, छोटे–छोटे धब्बे दिखाई देना आदि सामान्य लक्षण हैं। बीमार मछलियों में खुजली होने लगती हैं जिससे मछलियाँ शरीर को रगड़ने की कोशिश करती हैं। शरीर का रंग सामान्य से ज्यादा काला हो जाता है। शरीर का म्यूकस (ललसता द्रव्य) भी अधिक मात्रा में निकलता है। ट्राउट, ग्रास कार्प एवं कौमन कार्प सबसे अधिक प्रभावित होते है। इस परजीवी का प्रकोप विशेषकर वर्षा ऋतु में देखा गया है। बीमार मछलियों का झुण्ड, सतह एवं किनारों पर अधिकतर आते रहते हैं।

कारण : ट्राइकोडिना भी प्रोटोजोन परजीवी है, इसकी कई प्रजातियाँ पायी जाती हैं जिनकी पहचान सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा आसानी से की जा सकती है। बहुत अधिक संख्या में मछली के जीरे का संचयन, अल्पाहार, अधिक कार्बनिक पदार्थों का जमा होना इत्यादि इसके कारण हैं। ये शरीर के जीवद्रव्य को चरते हैं।

रोकथाम : 3–4 दिन तक 2–3 % नमक के घोल में 2–3 मिनट तक डुबाकर रखना चाहिए, 1% 1,000 एसीटिक एसिड में 2–3 मिनट डुबाकर रखने से सारे परजीवी शरीर से अलग हो जाते हैं। इसके

छोटी सफेद थैली जैसी संरचना एवं गलफड़ों के ऊपर भी सफेद बड़ी–बड़ी लसलसी थैली जिनकी संख्या एक–दो से लेकर पूरे गलफड़ों के क्षेत्र तक ढकी होती है, पाये जाते हैं। कभी–कभी इनके शरीर से झड़ने के बाद छोटे–छोटे लाल दाग हो जाते हैं, जो अन्य जीवाणुओं को पनाह देते हैं। मछली बहुत कमजोर हो जाती है। यह छोटी–बड़ी सभी प्रकार की मछलियों में पायी जाती है। छोटी मछलियों के लिये यह काफी घातक होते हैं। नर्सरी तालाबों की यह सबसे प्रमुख बीमारी है। कौमन कार्प एवं ग्रास कार्प के गलफड़ों एवं शरीर के ऊपर, पखों के जड़ आदि पर सफेद बिन्दु के आकार के देखे जाते हैं। वृक्क एवं यकृत के अन्दर भी इन परजीवियों के स्पोर्स को देखा जा सकता है।

कारण : ये परजीवी एक सिस्ट बना लेते हैं और हजारों स्पोर्स एक खोल में रहते हैं जिसे सिस्ट कहते हैं। यही अवस्था मछलियों को रोगी करने की क्षमता रखती है। ये स्पोर्स आहार अथवा जल के साथ शरीर के अन्दर विभिन्न अंगों में प्रवेश करते हैं, जहाँ से इनका प्रवेश रक्त में होता है और अपने गन्तव्य जगह पर एकत्र होकर बढ़ना शुरू करते हैं। ये गलफड़ों के फिलामेन्ट की जड़ एवं सिरे, शल्कों के बीच में यकृत एवं वृक्क में पाये जाते हैं। वृक्क में जाकर वृक्क के टिब्यूल्स को नष्ट करना शुरू कर देते हैं। गलफड़ों की सतह को पूर्णतया आच्छादित करके मछलियों के श्वसन में बाधा उत्पन्न करते हैं। फलतः मछलियाँ धीरे–धीरे मरने लगती हैं। ये प्रमुखतः तीन प्रकार के होते हैं जिन्हें मिक्सोबोलस, हेनिग्वा एवं थेलीह्नेनस कहा जाता है।

रोकथाम : यद्यपि इसकी रोकथाम के लिये कोई विशेष औषधि उपलब्ध नहीं है फिर भी उचित प्रबन्धन कार्य काफी सहायक होते हैं। तालाब को जीरे के संवर्धन कार्य के लिये उपयोग करने से पहले अच्छी तरह ब्लीचिंग पाउडर 40–60 मिग्रा/ली के हिसाब से तल पर डालना चाहिए इससे तालाब के बचे स्पोर्स नष्ट हो जाते हैं।

2.4. माइकोस्पोरिडियन

लक्षण : ये भी प्रोटोजोआ के स्पारोजोआ वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। ये मुख्यतः शरीर के अन्दर के अंगों में होते हैं। इनसे शरीर के बाहर कोई स्पष्ट लक्षण नहीं दिखाई देते हैं लेकिन मछली बीमार–सी दिखती है। ये विडाल वर्ग के मछलियों के अण्डाशयों में तथा कार्प वर्ग की मछलियों के वृक्कों में पाये जाते हैं। इनके संक्रमण से मछलियों की परिपक्वता पर प्रभाव पडंता है।

कारण : ये परजीवी मुख्यतः ऊतकों के बीच में पाये जाते हैं। यकृत, वृक्क एवं अण्डाशय में इनकी उपस्थिति से विकार की सम्भावना बढ़ जाती है।

रोकथाम : इनके रोकथाम के लिये उचित प्रबन्धन कार्य ही उपयोगी होता है।

कारण : यह बीमारी वोर्टीसेला (Vorticella), इपिस्टाइलिस (Epistyllius), जोआथेम्नियम (Zoothamnium) आदि तन्तुओं वाले प्रोटोजोआ का भारी संख्या में शरीर पर उगने से होता है। ये मुख्यतः कार्बनिक पदार्थो, सड़ी हुई चीजों एवं घावों पर रहना पसन्द करते हैं। कार्बनिक पदार्थो का अधिक मात्रा में जमा होना इनके अधिकता का मुख्य कारण है। मछलियों या झीगों का बहुत सघन संचयन अथवा तनाव आदि इस परजीवी के पनपने में सहायक होता है।

रोकथाम : कार्बनिक पदार्थो को छोटे टैंकों अथवा तालाबों से समय–समय पर, निकलवाना उपयोगी होता है। क्योंकि यह अधिकतर छोटे प्लास्टिक पूलों, टैंकों इत्यादि में देखे जाते हैं। पोटैशियम परमेंगनेट का घोल 2–3 मिग्रा/लीटर के हिसाब से छोटे टैंकों या प्लास्टिक पूलों में देने से काफी लाभ मिलता है। समय–समय प्लास्टिक पूलों एवं टैंकों को फॉरमैल्डीहाइड से साफ करते रहना चाहिए। नमक 2–3% के घोल में प्रभावित मछलियों को डुबाने से स्थिति में सुधार होती है।

कृमियों से उत्पन्न विकार

कृमि प्लेटीहैल्मैन्थिस फाइलम के अन्तर्गत आते हैं। ये सभी उम्र की मछलियों में पाये जाते हैं तथा भारतीय प्रधान कार्प मछलियों के लिये काफी घातक होते हैं। कार्बनिक पदार्थो की अधिकता इनके फैलाव में सहायक होती है। डैक्टाइलोगाइरस गाइरोडेक्टाइलस, डिप्लोस्टोमुला एवं लिग्यूला आदि प्रमुख कृमि हैं।

2.6 डैक्टाइलोगाइरोसिस

लक्षण : डैक्टाइलोगाइरस परजीवी फाइलम प्लेटीहैल्मैन्थिस के मोनोजिनिया वर्ग में आते हैं। इन कृमियों के जीवन चक्र में एक ही होस्ट होता है। इससे प्रभावित मछलियों के शरीर से हल्के नीले रंग का म्यूकस बहुत अधिक निकलता है। मछलियों का रंग भी सामान्स से ज्यादा काला हो जाता है। गलफड़ों के ऊपर हल्के सफेद पीले रंग की धारियाँ–सी दीखती हैं। गलफड़ों का रंग सामान्य रंग से अलग पीले लाल रंग का हो जाता है। घाव भी हो जाते हैं। बहुत ज्यादा संक्रमण की अवस्था में गलफड़ों के ऊपर हल्के पीले रंग की रूई जैसी संरचना जिसमें मिट्टी इत्यादि भरी रहती है, हो जाती है। इनका प्रभाव विशेषकर गलफड़ों के ऊपर होता है। इससे मछलियाँ बीमार सी दीखती हैं। मछलियों की वृद्वि रूक जाती है और अन्त में मरने लगती हैं। इन्हें सूक्ष्मदर्शी यन्त्र द्वारा ही देखा जा सकता है।

कारण : डैक्टाइलोगाइरस नामक कृमि से मछलियों में यह संक्रमण होता है। कृमियों की पहचान इसमें उपस्थित दो आँख के धब्बे एवं 14 किनारे के हुक (सात जोड़े) एवं दो बड़े हुक से होती है। ये अण्डे देती हैं। ऐसे तालाब जिसमें कार्बनिक पदार्थ ज्यादा हों, मछलियों की संख्या अधिक हो, ऑक्सीजन की मात्रा कम रहती हो, अमोनिया की मात्रा अधिक रहती हो, पानी का पी एच सामान्य से नीचे हो, में इनके संक्रमण की आशंका बहुत अधिक रहती है। छोटी–बड़ी सभी मछलियाँ इससे प्रभावित होती हैं। ये मछली के गलफड़ों

मिग्रा/ली के हिसाब से देने से भी इसकी रोकथाम हो जाती है, लेकिन अधिक संक्रमण में दवाई का सेवन करना ही उपयोगी होता है।

2.7. गाइरोडेक्टाइलोसिस

लक्षण : शरीर के ऊपर छोटे–छोटे लाल दाग होना, अत्यधिक म्यूकस द्रव्य का त्वचा से निकलना, मछलियों की वृद्वि न होना एवं बेचैनी इसके लक्षण हैं। यह परजीवी गलफड़ों एवं मछली की त्वचा दोनों पर निवास करता है। अतः दोनो जगहों पर ही इनके लक्षण देखे जा सकते हैं। गलफड़ों में रक्त वाले घाव होना, गलफड़ों का टूटना, सड़ना आदि प्रमुख लक्षण है।

कारण : यह भी डैक्टाइलोगाइरस परजीवी वर्ग का जन्तु है जिसे गाइरोडैक्टाइलस कहते हैं। इसमें आँखें नही होती है एवं बाहरी हुकों की संख्या 16 (8 जोड़े) एवं दो बड़े हुक बीच में होते हैं। यह बच्चों को जन्म देता है। ये भी विषम परिवेशों में पाये जाते हैं तथा जीरों तथा अंगुलिकाओं के शरीर में पाये जाते हैं। इनके संक्रमण से 80–90% जीरे मर जाते हैं। कार्बनिक पदार्थों की अधिकता एवं छोटे नियन्त्रित क्षेत्र में इनकी वृद्वि की संभावना अधिक होती है।

रोकथाम : इस संक्रमण को भी डैक्टाइलोगाइरस की तरह नियंत्रित किया जा सकता है। उचित तालाब प्रबन्धन कार्य इसकी रोकथाम में सहायक होता है।

2.8 रेनबो ट्राउट की ऑखों की बीमारी

लक्षणः बड़ी मछलियों में यह ज्यादा पायी जाती है। प्रभावित मछलियों की ऑखें शुरूवात में हल्की एक किनारे से लाल लाइन की तरह दिखती है। धीरे–धीरे पूरी ऑख सफेद हो जाती है। और एक सफेद परत से ढ़क जाती है। पूरी ऑख का बाहर निकलना, ऑख के लेंन्स का सिकुड़ना, मछलियों का कमजोर दिखना, रंग अधिक काला हो जाना, पूरी तरह से मछलियों का अंधा हो जाना और अन्त में मछलियों की मृत्यु हो जाती है। छोटी 1–2 साल की रेनबो ट्राउट में यह बीमारी बहुत कम देखी गयी। अधिक संक्रमण की अवस्था में 35–40 प्रतिशत तक मछलियॉ प्रभावित हो जाती हैं। अंधेपन की वजह से मछलियाँ दिया हुआ खाद्य ठीक तरह से ग्रहण नहीं कर पाती हैं और धीरे–धीरे कमजोर होकर मरने लगती हैं।

कारणः यह बीमारी प्रायः डिप्लोस्टोमियम स्पैतिकम नामक डाईजैनिक ट्रिमाटोड, जिसका जीवन चक्र तीन जीवों में पूरा होता है द्वारा उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त कभी–कभी इस तरह के लक्षण फलैबोबैक्टिरियम / ऐरोमोनास वैक्टिरिया द्वारा प्रभावित मछलियों में भी उत्पन्न होते हैं। महत्वपूर्ण खाद्य अवयवों की कमी में भी ऑख की बीमारी देखी गयी है।

उपचारः रोग के लिये जिम्मेदार कारक की उचित पहचान कर निदान किया जा सकता है।

समय–समय पर मछलियों के टैंकों की सफाई।

यह परजीवी 5–8 मिमी. आकार का जुएं जैसा दिखाई देता है। जिसे नग्न आँखों से भी मछलियों के उपर अथवा नीचे की पंखों की जड़ों पर मजबूती से चिपका हुआ देखा जा सकता है। इस परजीवी के मुख में जहरीली ग्रन्थि पायी जाती है, जो मछली के शरीर से रक्त एवं उत्तकों के द्रव्य को चूसते हैं। इनके द्वारा शरीर के उपर किये गये घावों में फफूँदी एवं जीवाणुओं के संक्रमण की आशंका बढ़ जाती है। प्रायः पालन तालाबों में अधिक कार्बनिक खादों एवं अधिक संचय दर से इस रोग के उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है। शरीर से म्यूकर अथवा लसलसा द्रव्य अधिक मात्रा में निकलता है। एवं मछलियॉ अत्यधिक बेचैन रहती है और बार बार तालाब की सतह तथा किनारों पर दिखाई पड़ती है।

उपचार

- बूटैक्स 0.7मिली/100 वर्ग मीटर।
- तालाब के जल में कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग में संतुलन तथा इसका उचित प्रबंधन ।
- एक ग्राम परमैगनेट (KMnO4) को 10 लीटर पानी में घोलकर रोगग्रसित मछली को 2–2 मिनट तक इस घोल में डुबो कर रखने से लाभ होता है अथवा 2.5 प्रतिशत नमक के घोल में डुबोने से भी ये परजीवी छूट जाते हैं।
- तालाब में 200 किग्रा/हे. के हिसाब से चूने का प्रयोग भी तालाब में आरगुलोसिस के नियंत्रण में सहायक होता है।
- तालाबों में प्रयोग किये गये जाल, हापा, हैन्डनेट आदि को खुब धूप में सुखाकर तालाबों में प्रयोग करना चाहिए। संक्रमित तालाब में उपयोग किये गये जाल को दूसरे तालाब में उपयोग पूर्व इसे सुखाना आवश्यक है।

3 तालाबों में मत्स्य बीमारियों की पहचान एवं रोकथाम हेतु अपनाये जाने वाले विभिन्न कदमों का संक्षिप्त सारांश

- तालाब या नर्सरी में संचय की गयी मछलियाँ यदि मरी अथवा असामान्य व्यवहार दर्शाती हैं तो सावधानी पूर्वक लक्षणों पर ध्यान देना चाहिए।
- यदि मछलियाँ सुबह के समय ही तालाब की सतह पर आती हैं और सूर्य निकलने के साथ सामान्य व्यवहार करने लगी है तो संभव है कि तालाब में घुलित ऑक्सीजन की कमी है।
- नील–हरित शैवाल की अधिकता, कार्बनिक पदार्थो का अधिक जमाव अदि इसके प्रमुख कारण हैं।
- गर्मियों की पहली बरसात एवं बादल लगे उमस लगे वाले दिनों में भी सघन मत्स्य पालन तालाबों में इस तरह की समस्या सामान्य होती है।

- समय–समय पर सीमेंन्ट टैंकों/पालन तालाबों से 1–2 फीट पानी बाहर कर साफ पानी मिलाना, बड़ी मछलियों को तालाब से निकालकर इनका बिक्री कर देना, नियमित रूप से आवश्यक मात्रा में चूने का प्रयोग।
- मत्स्य पालन टैंकों के तल को समय–समय पर खरोचना, अनावश्यक मात्रा में खाद्य एवं खादों का प्रयोग न करना आदि लाभकारी होते हैं।
- इसके साथ ही कृषक को अपने तालाबों के पानी को किसी निकटतम प्रयोगशाला में जाँच हेतु देना भी आवश्यक है, ताकि सही कारक का पता चल सके और उचित निवारण हेतु कदम उठये जा सके।
- बीमारी की अवस्था में तालाब में जाल चलाकर दिखाई देने वाले लक्षणों को पहचान कर बीमारी की रोकथाम के उपाय अपनाना लाभदायक है। यदि बीमारी समझ में न आये तो किसी मत्स्य विशेषज्ञ की सलाह लेनी उचित है। ध्यान रहे इस ओर जरा सी भी लापरवाही बरतने से आर्थिक क्षति उठानी पड़ सकती है।
- मछली पालन टैंकों में कीठनाशकों अथवा रसायनों का प्रयोग किसी विशेषज्ञ की सलाह से हर करना चाहिए।
- जब भी निकटतम मत्स्य विशेषज्ञ के पास जाये, सूर्य उगने से पहले एक साफ बोतल में रोगग्रस्त तालाब का पानी भर कर साथ ही ताजी रोगी मछलियों को भी साथ लेकर जायें, क्योंकि सड़ी मछलियों में बीमारी की पहचान नहीं हो पाती है।
- यदि उपचार अत्यन्त महंगा हो तो स्वस्थ मछलियों को तालाब से निकालकर उनकी बिक्री कर देना उचित होता है।
- सभी तरह से अपनाये जाने वाले कदमों को यथाशिघ्र करना आवश्यक है। अन्यथा रोग की गंभीरता की अवस्था में इनकी रोगथाम करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायी नहीं होता है।

बदलता पर्यावरण और जीव-जन्तुओं पर प्रभाव

प्रो. जी. सी. पाण्डेय

पर्यावरण विज्ञान विभाग, डा. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविधालय, फैजाबाद, (उ.प्र.)

वायुमण्डल, भूमि, नदियॉ, समुद्र वनस्पति, जीव–जन्तु और यहां तक कि सूक्ष्म बैक्टीरिया और वायरस भी वर्यावरण के विभिन्न अवयव हैं। पर्यावरण के सभी अवयव एक दूसरे से जुड़े हैं। जो पर्यावरण संतुलन का ताना–बाना बुनने के साथ–साथ तथा जीवन कि क्रियाओं को चलाने में मदद करते हैं। शरीर के अन्दर जो महत्व फेफड़े का होता है वहीं महत्व पर्यावरण को संतुलित बनाने के लिए वनों में होता है। इनमें अगर थोड़ा सा भी परिवर्तन हो तो पूरे पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है।

जीवन की उत्पति और विकास में हमारे पर्यावरण का बहुत योगदान है। उधोगों ने जहॉ एक ओर रोजगार के नये अवसर देकर देश की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ की, वहीं दुसरी तरफ पर्यावरण का विनाश भी किया। एक तरफ पेड़ कटे तो दूसरी तरफ प्राकृतिक वातावरण में विभिन्न गैसे और कचरा मिलने लगा। कच्चे माल के लिये खाने काटी गई, पेड़ काटे गये, एवम् खनिज पदार्थों का उपयोग करने वाले दुसरे उधोग खड़े किये गये। विभिन्न प्रकार का वाहन, विद्युत आपूर्ति, वातानुकूलित संयत्र और कई सुविधायें जीवन को सुगम तो बनाती है परन्तु पर्यावरण को नुकसान पहॅुचाती है।

बदलते परिवेश में अनुसंधानों से स्पष्ट है कि पर्यावरण के विभिन्न अवयवों को मानवीय क्रियाओं द्वारा बहुत नुकसान पहॅुचाया जा रहा है। पर्यावरण को हानि पहॅुचाने वाले कारणों में प्रदुषण का प्रमुख योगदान है। पर्यावरण के विभिन्न अवयवों की निश्चित संरचना होती है। इन अवयवों मे अन्य दूसरे प्रकार का पदार्थ जब मिल जाता है, तब इनकी मौलिक संरचना बदल जाती है और इसी को प्रदूषण कहते है। प्राकृतिक क्रियाओं द्वारा भी प्रदूषण होता है। जैसेः ज्वालामुखी का फटना, दावानल, चक्रवात, भूकम्प और भू–अपरदन। प्रदूषण का सबसे गंभीर प्रभाव मानव–स्वास्थ और जैव–विविधता पर निम्नलिखित है रूप से पड़ता है।

1. जीवाश्म ईधनों का अत्यधिक प्रभाव से वायुमंडल में co_2 की सान्द्रता बढ़ती है, फलस्वरूप वायुमण्डल के तापमान में वषद्वि हो रही है।
2. $CO_2 CH_2$ और NO_x की वायुमण्डल में बढ़ती सन्द्रता से ग्रीन हाऊस प्रभाव और वायुमण्डल के तापमान में बढ़ोत्तरी से औसत समुद तल में वद्रि के कारण तटीय शहरों के डूबने का खतरा,

4. जीवाश्म ईधनों का अधिक प्रयोग करने से अम्लीय वर्षा होती है फलस्वरूप कृषि, वन–सम्पदा, प्राचीन इमारतों, मृदा और जलीय संसाधनों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।
5. मानवीय क्रियाएं, जैसे जल पातो से तेल का रिसाव और जल पोतो की दुर्घटना से समुद्रीय प्रदूषण उत्पन्न होता है फलस्वरूप समुद्री जैविक संपदा का विनाश हो रहा है।
6. बढ़ता शहरीकरण, उधोगों का कचरा, जलीय स्रोतों (सतही एवं भूजल) के अत्यधिक दोहन के कारण नदी में कम पानी का बहाव और वनों की कटाई से भूजल में कमी हो रही है जिससे जल प्रदूषण हो रहा है फलस्वरूप पानी से अनेक रोग, जैविक संपदा का ह्रास एवं उपयोग योग्य जल की कमी हो रही है।
7. वाहनों एवं औधोगीक उत्सर्जन, जीवाश्म ईधनों का अत्यधिक प्रयोग से वायु प्रदुषण हो रहा है जिससे शुद्व हवा का आभाव के साथ–साथ वायु जनित बीमारियॉं उत्पन्न हो रही हैं।
8. शोर से ध्वनि प्रदूषण होता है फलस्वरूप बहरापन हारमोनल विकृति एवं किसी कार्य में मन न लगना पाया जाता है।
9. कीटनाशकों और रासाकनिक उर्वरकों का अत्यधिक प्रयोग एवं विभिन्न प्रकार के कचरों का भूमि पर संचय होने से मृदा प्रदूषण होता है फलस्वरूप भू–जल प्रदूषण होना एवं भूमि की जैविक संपदा का ह्रास होना स्वाभाविक है।
10. मानवीय क्रियाएं और विभिन्न किस्म के प्रदूषण से जैव–संधाधनों में कमी एवं जैविक विविधता का विलुप्तीकरण देखा जा रहा है।

वन्यजीव एवं वनस्पति का अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर है और इसमें असंन्तुलन होने की स्थिति में परिस्थितिकीय एवं पर्यावरण असंतुलन होने से अनेक विषमतायें उत्पन्न हो रही है। वन्य जीव, खाध–चक्र में एक दूसरे से जुड़े तथा निर्भर है अगर इस चक्र पर कुप्रभाव पड़ता है और उसके टूट जाने की आशंका बनी रहती है। वन्य जीव 'जीन पूल' का मुख्य श्रोत हैं। इनमें से किसी भी जीव के अस्तित्व की समाप्ति के प्रजाति विशेष की जीव ही समाप्त हो जायेगी और जैविक विविधता का संरक्षण ही संकट में होगा।

भारत 329 मिलियन हेक्टेयर भू–भाग का स्वामी है और वनस्पति यहां पाये जाते हैं। एक जलवायुवीय कारणों से लगभग हर तरफ के जीव–जन्तु और वनस्पति व प्राणियों की किस्मों मे से लगभग 1500 वनस्पति (250000 विश्व रिकार्ड का 60%), 182–उभयचर (4184–4.4%), 453 सरीसृप (6300–7.2%), 1200–पक्षी (9198–13.1%), 350–स्तनपायी (4170–8.4%), 1693 मछलियॉं (2300–7.4%), 60000–कीट (800000–7.5%) एवं 5000 घोघे (100000–5%), आदि भारत में पाये जाते हैं।

के विलुप्त होने की दीर तीन/घण्टा है। अगर यही स्थिति रही तो सन् 2000 तक पृथ्वी से 10 लाख और सन् 2115 तक पूरी प्रजातियों का चौथाई हिस्सा साफ हो चुका होगा। फूलवाले पौधों की 600 से ज्यादा जतियों के अलावा, संकट में फसे प्राणियों में साइबेरियन सारस, काले भालू हिरण, एशियाई सिंह, बाघ, इंगुल, कस्तुरी मृग, पहाड़ी तेन्दुआ, लोरिस, गिब्बन, बारहसिंगा, काला पंडा, भेड़िया, गैड़ा, हाथी, आदि जिन्हे सर्वाधिक सुरक्षा संरक्षण की आवश्यकता है।

विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्वि गुणत्मक रूप में बढ़ रही हैं फलस्वरूप बढ़ती हुई आबादी हमारे जैव विविधता को दो तरीकों से बिरल कर रही है। एक तो वन्य जीव एवं वनों का आवास, कृषि और शहरीकरण के लपेट में आता जा रहा है। दूसरा आबादी से प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। एक कारण वन्य जीवों की तस्करी जिससे बचा हुआ परितंत्र प्रतिकूल दृष्टि से प्रभावित हो रहा है।

पेड़–पौधों की संरचना एवं उपयोगिता के बारे में तो सभी जानते हैं परन्तु उनके परिस्थितिकी उपयोगिता के बारे में कम, और उनके पारितंत्र के बारे में शायद विल्कुल ही नही जानते हैं जबकि आज इसकी आवश्यकता सबसे ज्यादा है क्योंकि एक पेंड़ एक खास तरह के वातावरण में ही पनपता है और दूसरी जगह है क्यो नहीं ? प्रकृति इन्हीं विविघ जीव–जन्तुओं से हर जगह का जैव सामग्री स्वतः अपने आदर्श तकनीक एवं प्रबन्ध कौशल से नियमित करती हैं। एक पेड़ दूसरे पेड़ से और एक जन्तु दुसरे जन्तु से और पेड़ जन्तु से एक दूसरे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े हुए है। अगर एक चीज भी टूटती है तो पूरी की पूरी श्रंखला लड़खडाने लगती है। हमारे देश में ऐसे अनेक परितंत्र नष्ट हो गए है जिनका पुनर्विन्यास अब संभाव नहीं। वन सम्पदा प्रभावित हो रही है। कर्नाटक में झींगा मछलियों के लिए यह परितंत्र भेट चढ़ गया है।

कृषि क्षेत्र में, आनुवांशिक रूप से सुधरी किस्मों और फसलों के कारण, खाने–पीने मे उपयोग होने वाली वस्तुओं का दायरा सिमटता जा रहा हैं। भारत में गाय, बैलों की 26 जातियॉ, भैसों की 8, भेड़ों की 40, बकरियों की 20, ऊटों की 8, घोड़ों की 6 और मुर्गियों की लगभग 18 जातियॉ पायी जाती है। इनमें से हम बहुतो की उपेक्षा करते आये है। संकटापन्न जातियों की उत्पत्ति से अपने स्थानीय जातियों को उस बिन्दु पर पहुँच रहे हैं जहॉ से उनकी वापसी सम्भव नहीं ?

हाल के वर्षों में वन्य जीव प्राणियों तथा वन्य जीव उत्पादों से अवैध व्यापार बड़े नियोजित तरीके से चल राह है तथा इस समस्या से निपटना तुरन्त सम्भव नहीं हैं। अवैध व्यापार पर प्रभावी नियंत्रण के लिए प्रसांगिक कानून प्राविधान, एजेंसियों का सक्रिय सहयोग बहुत आवश्यक है। वन्यजीव व परिस्थितिकीय संरक्षण के लिए देश में केवल 80 राष्ट्रीय उघान, 441 वन्य जीव अभ्यारणय है जो 148700 किमी0 क्षेत्र में फैला है (देश का कुछ भौगोलिक क्षेत्र का मात्र 4% ही है)।

... के लिए 1973 में 'बाघ परियोजना' तथा 1991–92में 'हाथी

प्रजातियों के व्यापार को भी नियंत्रित के व्यापार को भी नियंत्रित करता है। इस अधिनियम में 1991 में व्यापक वानस्पतिक किस्मों एवं विशेष स्थान पर संरक्षित वन्य जीवों को सुरक्षा प्रदान की गई है।

भारतीय वन्य जीव मण्डल ने भी वन्य जीव जन्तुओं के संरक्षण हेतु अनेक कार्य किये हैं। जिनमे वन्य जीवों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाना, अवैध रूप से वृक्षों को काटने से रोकना, विलुप्त प्राय जन्तुओं को मारने, बाघ, तेन्दुए की खाल, गेंडे का सींग, साप एवं मगरमच्छ की खाल की निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाना, आदि हैं। वन्य जीवों के संरक्षण हेतु में कार्बेट राष्ट्रीय उघान बाघ के लिए, लखनऊ में घड़ियोलों के लिए, किया गया है। गुजरात में गिर शोरों के लिए, आसाम में काजींरंगा गैडों के लिए तथा राजस्थान में घाना, जल पक्षी के लिये किया गया है।

भारत सरकार द्वारा गैर सरकारी संगठनों, विश्वविधालयों व समर्पित व्यक्तियों द्वारा वन्य जीवों पर किये गए शोध व अध्ययन को भी प्रोत्साहन व समर्थन दिया जाता है। देश में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम और सुरक्षा के लिए जो भी कानून बनाये जाते हैं वह केवल सरकार से ही सम्भव न होकर समाज के विभिन्न वर्गों, समुदायों के सहयोग के सहयोग के बिना सफलता प्राप्त करना संभव नहीं है। अतः जरूरत इस बात की है आज देश का प्रत्येक नागरिक प्राणियों की खाल व अन्य अंगों का उपयोग न करने का संकल्प ले। व्यापक जन चेतना, जागरूकता के बिना प्राकृतिक संपदा की रक्षा नहीं की जा सकती है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार: सामान्य जानकारी

प्रेम कुमार एवं एस. अली

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

प्रस्तावना

एक विकसित मस्तिष्क के व्यक्ति के दिमाग में हमेशा कुछ नया करने की चाहत रहती है। वह किसी समस्या को , आम लोगों से अलग ढंग से सोचता है और उसका समाधान निकालने की कोशिश करता है। इस तरह के व्यक्ति के मन में नित्य नये–नये विचार आते रहते हैं और यदि उसको अपने इस नये विचारो पर काम करने का मौका और सुविधा मिलता है तो एक नया या विकसित आविष्कार होता है।

मस्तिष्क की ऐसी अभिव्यक्ति जो किसी आविष्कार अथवा कोई साहित्यिक या कलात्मक कार्य में बदली जा सके जैसे–कोई पहचान चिन्ह, प्रतीक, नाम, प्रतिमाएं जो वाणिज्य में इस्तेमाल किया जाता है, बौद्धिक सम्पदा (Intellectual Property) कहलाता है। दूसरे शब्दो में, वह कोई भी वस्तु, जो किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की ऊपज हो, जैसे कोई शब्द, वाक्य प्रतीक, डिजाइन, संगीत, काव्य, कलात्मक कार्य खोज (Discovery) एवं आविष्कार (Invention) जिसका कोई आर्थिक या सामाजिक विकास में महत्व हो वह व्यक्ति की बौद्धिक सम्पदा कहलाती है। शब्द बौद्धिक सम्पदा का उपयोग उन्नीसवीं शताबदी में प्रारम्भ हुआ तथा 20 वीं शताबदी में यह शब्द संयुक्त राज्य अमेरिका में आत रूप से उपयोग में आने लगा।

जैसा कि हम जानते हैं कि मस्तिष्क का विकास सभी व्यक्तियों में ऐक समान नहीं होता, न ही यह किसी खास उम्र, स्थान आदि पर निर्भर करता है। किसी छोटी जगह से रहने वाला, छोटी उम्र का व्यक्ति भी विकसित मस्तिष्क का मालिक हो सकता है। मस्तिष्क का विकास लिंग विच्चेद्गा पर निर्भर नहीं करता। लाखो में कोई एक ऐसा व्यक्ति होता है जिसका मस्तिष्क इस स्तर तक विकसित होता है कि वह कोई आविष्कार कर सके।

यह बौद्धिक सम्पदा, जिसके विकास में किसी व्यक्ति अथवा कंम्पनी ने अपनी जीवन गुजार दी, अगर सुरक्षित नहीं किया जाये तो क्या होगा? आपकी अपनी सम्पदा किसी और के हाथ जा सकती है जो इसका गलत इस्तेमाल करके मुनाफा कमा लेगा। साथ ही, वह बौद्धिक सम्पदा, जो किसी देश के विकास में

उठा सके। साथ ही, नियम यह भी सुरक्षित करता है कि यह सम्पदा आम आदमी की जरूरत के अनुसार उस तक पहुँच सके।

निम्नलिखित दो कारणो से बौद्धिक सम्पदाओं को बचाने के लिये कानून बना है:–

अ) रचनाकार को एक सांबैधानिक, नैतिक और आर्थिक अधिकार प्रदान करने के लिये ताकि वो अपनी रचना को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाते हुए ज्यादा से ज्यादा पारितोषिक पा सके।

ब) रचनात्मकता को बढ़ाबा, विस्तार और फेयर ट्रेड (fair trade) को बढाबा देने के लिये, जो की देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकाश में सहायक सिद्ध हो। बौद्धिक सम्पदा को मुख्यरूप से निम्नलिखित भागों में विभक्त किया जा सकता है:

1) पैटेंट (Patents),
2) ट्रेडमार्क (Trademarks),
3) कॉपीराइट (Copyrights),
4) औद्योगिक डिजाइन (Industrial Designs)
5) ट्रेड सेक्रेट्स (Trade Secrets) और
6) भौगोलिक संकेत (Geographical Indications)

पैटेंट

पैटेंट, एक प्रकार का अन्नय एकाधिकार (Exclusive Monopolistic Rights) हैं, जो किसी आविष्कारक या उसके उत्तराधिकारी या उसके द्वारा कानूनन सत्यापित व्यक्ति को, उसके आविष्कार के लिये, सम्बन्धित सरकार के द्वारा, निश्चित समयावधि तक, प्रदान किया जाता है। इस समयावधि में, आविष्कारक अथवा उसके प्रतिनिधि को यह अधिकार होता है कि वह अपने आविष्कार का व्यापारिकरण कर सके और उससे आर्थिक लाभ उठा सके।

चूकि, एक व्यक्ति अपने जीवन का अमूल्य समय और धन किसी आविष्कार के पीछे लगाता है, तक जा कर कहीं वह कामयाब हो पाता है। अतः, पैटेंट, उस वयक्ति (आविष्कारक) को, सरकार द्वारा निर्धारित एक रिवार्ड है जिसका लाभ उसे 20 वर्षो तक मिलता है (Patents are granted for 20 years in India and also in other WTO member countries)। इन 20 वर्षो के बाद, यह पैटेंटेड आविद्गकार, पूरे समाज/देश की सम्पत्ति कहलाती है।

कोई आविष्कार, वास्तव में तभी पैटेंट कराया जा सकता है

भारतीय पैटेंट एक्ट, 1970 (Indian Patent Act 1970-Amendment, 2005), संच्चोधन–2005, के तहत किसी आविष्कार को सुरक्षित करने के लिये निम्नलिखित फॉर्मो को भरना पड़ता है, और उसे पैटेंट ऑफिस, कोलकाता, न्यू दिल्ली, चेन्नई या मुम्बई में जमा करना पड़ता है रू–

फॉर्म–1 पैटेंट अनुदान का आवेदन (Application for the Grant of Patent)

फॉर्म–2 कार्य का अपूर्ण/पूर्ण विवरण (Provisional or Complete Specification)

फॉर्म–3 आवेदक का उपक्रम एवं व्याखया (Statement and Undertaking by Application)

फॉर्म–5 आविष्कारक के तौर पर घोषणा (Declaration as to Inventor ship)

फॉर्म–26 किसी अन्य व्यक्ति या पैटेंट एजेंट की प्राधिकृति (Authorization of Patent Agent or any other Person)

कॉपीराइट

यह एक प्रकार अधिकार है जिसके तहत किसी लेखक या रचनाकार को उसके कार्य के कॉपी, वितरण एवं उपयोग का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। कॉपीराइट नियम के तहत सुरक्षित रचना का उपयोग कोई दूसरा व्यक्ति तब तक नहीं कर सकता जब तक वह रचनाकार से अनुमति नहीं ले लेता।

आमतौर पर, रचना को कॉपीराइट सुरक्षित करने के लिये किसी प्रकार के रजिस्ट्रेशन की जरूरत नहीं है। केवल, © रचनाकार का नाम एवं रचनावर्ष लिख देने से रचना अपने आप में सुरक्षित हो जाती है। वैसे भारतीय संबिधान के कॉपीराइट एक्ट 1957, जो जनवरी 1958 से कार्य रूप में आया, जिसका पाँच बार संच्चोधन हो चुका है (Amendment, 1983, 1984, 1992, 1994 and 1999), के तहत, किसी रचना के रजिस्ट्रेशन का आवेदन, फार्म– IV (Form-IV) को भरकर, निर्धारित शुल्क के सपमि, शिक्षा विभाग, नई दिल्ली के कॉपीराइट कार्यालय में जमा किया जा सकता है। प्रक्रिया पूर्ण होने पर रजिस्ट्रेशन भी प्राप्त किया जा सकता है। यह रजिस्ट्रेशन रचनाकार के जीवन प्रयंत तथा तत्पशचात 50 वर्ष तक मान्य रहता है।

ट्रेडमार्क

किसी व्यक्ति, व्यापारिक संगठन अथवा कानूनी इकाई के द्वारा, उसके उत्पाद अथवा सेवा को अन्य किसी उत्पाद या सेवा से पृथक करने के लिये उपयोग में लाये जा रहे किसी विच्चिद्गट संकेत या सूचक को उसका ट्रेडडमार्क कहते हैं। इस सूचक या संकेत के द्वारा, ग्राहकों को, कम्पनी यह दर्शाति है कि यह उत्पाद एवं इसकी गुणवत्ता, अन्य से भिन्न है।

ट्रेडमार्क को दर्शाने के लिये निम्नलिखित संकेत उपयोग में लाया जाता है :–

एक पारम्परिक ट्रेडमार्क, किसी नाम, शब्द, मुहावरा, लोगो (स्वहव), प्रतीक (Symbol), डिजाइन या इन सब के मिश्रण से बनता है। जबकि, किसी खास रंग, गंध या ध्वनि पर आधारित ट्रेडमार्क गैरपारम्परिक कहलाता है।

किसी उत्पाद या सेवा (Goods of Services) बाजार में लाने के लिये, यह जरूरी नही कि उसका रजिस्ट्रेशन कराया जाये। लेकिन, इस उत्पाद या सेवा के गैरकानूनी उपयोग को रोकने के लिये यह जरूरी है कि उसका रजिस्ट्रेशन कराया जाये।

भारत में, ट्रेडमार्क एक्ट, 1999 (Trade Marks Act- 1997), जो कि 15 सितम्बर, 2003 से कार्य रूप में आया, के तहत कोई भी व्यक्ति अपने उत्पाद या सेवा का रजिस्ट्रेशन, ट्रेडमार्क रजिस्ट्रेशन ऑफिस (Trademark Registration Office), जो कि मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई एवं अहमदाबाद में स्थित है, से करवा सकता है। जिसके लिये, आवेदन फार्म, TM–1, भरकर, 2500/रू. शुल्क के साथ ऊपरलिखित किसी भी ऑफिस में जमा करना पड़ता है। एक रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क 10 पश्चात, प्रत्येक 10 वर्ष पर, नवीनीकरण कराना पड़ता है।

औद्योगिक डिजाइन

किसी वास्तविक वस्तु का सौंदर्य मूल्य युक्त, ऐसा कोई भी आकार या ढाँचा, जो द्वीआयामी (Two Dimensional) या त्रिआयमी (Three Dimensional) हो, और जो किसी रंग, लाइन अथवा अन्य किसी सामान के मिश्रण से बना हो, साथ ही जिससे किसी तैयार वस्तु का पूर्णतः पूर्वानुमान लगता हो, इंडस्ट्रियल डिजाइन (Industrial Design) कहलाता है।

TRIPS (Trade Related Aspects of intellectual Property Rights Agreement, 1994) समझौता (इस समझौते का नियम, WTO (World Trade Organization) के सदस्य, सभी देच्चों पर लागू होता है) के अनुच्छेद 25 एवं 26 को ध्यान में रखते हुए, भारत ने भी, औद्योगिक डिजाइन सुरक्षा अधिनियम, जो डिजाइन एक्ट–2000 (Design Act, 2000) के नाम से जाना जाता है, बनाया। इस नियम के तहत, किसी भी औद्योगिक डिजाइन को रजिस्टर्ड करवाया जा सकता है, जो कि 10 वर्ष तक मान्य रहता है। तत्पश्चात पुनः 5 वर्ष के लिये नवीनीकरण करवाया जा सकता है।

ट्रेड सीक्रेट

TRIPS समझौते के अनुच्छेद 39, धारा 7,भाग II , के अनुसार, कोई तकनीकी डाटा, अंदरूनी तरीका, प्रक्रिया, सर्वेक्षण का तरीका, कोई नया आविष्कार (जिसके लिये पैटेंट आवेदन नही दिया हो), ग्राहको की सूची, उत्पाद को बनाने का तरीका, तकनीक, सूत्र या चित्र, आदि ट्रेड सीक्रेट के अंतगर्त आता है। कोई

भौगोलिक संकेत

किसी–किसी वस्तु की गुणवत्ता, उस वस्तु के उत्पादन के जगह पर निर्भर करती है, और उत्पादन की जगह बदलने से उसकी गुणवत्ता भी बदल जाती है। अतः इस तरह के किसी खास उत्पाद की गुणवत्ता को व्यक्त करने के लिये यह जरूरी है कि ग्राहकों को उसके उत्पादन की, जगह के बारे में भी बताया जाये। इस तरह के उत्पाद को, उस, जगह, जहाँ इसका उत्पादन हुआ है, के नाम के साथ दर्च्चाया जाता है, जैसे– Burgundy (एक विच्चेद्गा प्रकार के Wine का नाम है जो वास्तव में फ्रांस के एक प्रांत का नाम है, और यहीं इसे बनाया जाता है।) Champagne (एक विच्चेद्गा प्रकार के Wine का नाम है जो वास्तव में फ्रांस के एक प्रांत का नाम है, और इसे यहीं बनाया जाता है।), कश्मीरी शाल (इसकी गुणवत्ता अन्य शाल से भिन्न होती है।)।

अतः भौगोलिक संकेत, किसी उत्पाद का नाम या उस पर अंकित एक प्रकार का चिन्ह है जो उसके उत्पादन की जगह के बारे में बताता है। किसी वस्तु के भौगोलिक संकेत (Geographical Indications of Goods (Registration and Protection) Act, 1999) के रजिस्ट्रेशन एवं सुरक्षा का कानून, भारत में, 1999 में बना जो 15 सितम्बर, 2003 से लागू हुआ। यह नियम, किसी उत्पाद के भौगोलिक संकेत का रजिस्ट्रेशन एवं सुरक्षा प्रदान करता है। किसी उत्पाद के भौगोलिक संकेत का रजिस्ट्रेशन भी, पैटेंट, डिजाइन और ट्रेडमार्क के कंट्रोलर जनरल से प्राप्त किया जा सकता है। वैसे, भौगोलिक संकेत रजिस्ट्री ऑफिस, चेन्नई में है।

उपसंहार

यदि आपने कोई, उत्पाद विकसित किया है, तो ट्रेडमार्क नियम के तहत, आप अपने उत्पाद का बाजारीकरण, अपने ही किसी इच्छित ट्रेडमार्क से कर सकते है, जो नियमित नवीनीकरण करने पर, अनिश्चित काल तक वैध रहता है। बौद्धिक सम्पदाओं के संरक्षण से किसी व्यक्ति विशेष का ही नहीं, अपतु, सम्पूर्ण देश का आर्थिक एवं सामाजिक विकास होता है। बौद्धिक सम्पदा चारदीवारी में कैद करने की चीज नही, बल्कि, यह निखारने और समाज तक पहुँचाने की चीज है। यह किसी सरकार की नहीं, बल्कि, आपकी भी जिम्मेदारी है कि अपने विकशित मस्तिस्क का और अधिक विकास करें, और देश में उपलब्ध, पैटेंट, ट्रेडमार्क, कॉपीराइट सुरक्षा, आदि नियमों का फायदा उठाएँ। जहाँ, पैटेंट नियम के तहत, आप अपने आविष्कार को सुरक्षित कर, 20 वर्ष तक पारितोषिक पा सकते हैं, वही कॉपीराइट नियम के तहत, आप अपनी रचनाओं पर, जीवनप्रयन्त तथा तत्पश्चात आपके बंच्चे 50 वर्ष तक लाभ कमा सकते हैं। आज के इस वैश्विकरण के दौड़ में, जो देश और जिस देश का नागरिक, अपने बौद्धिक सम्पदा के प्रंबन्धन एवं सुरक्षा के प्रति जागरूक नहीं हैं, वह देश एवं उस देश का नागरिक कभी विकसित नहीं हो सकता। यह अध्याय,

शीतजल मछलियों के विषाणु जनित रोग एवं उनसे बचाव

अमित पाण्डे एवं नित्यानन्द पाण्डे

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

मछलियों की उन्नत पैदावार किसानों के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इस पर मत्स्य कृषक की आमदनी निर्भर करती है। स्वस्थ पशु जैसे किसान के लिये महत्वपूर्ण होते हैं उसी प्रकार एक स्वस्थ मछली का तालाब भी किसान के लिये अत्यन्त जरुरी है। स्वस्थ मछली जहाँ किसानो को एक ओर अच्छा मूल्य दिला सकती है वहीं दूसरी ओर मत्स्यों में होने वाले रोग मछलियों की पैदावार को प्रभावित कर सकते हैं।

मछलियों में भी मनुष्यों व अन्य पशुओं की भाँति विभिन्न रोग पाए जाते हैं। मछलियाँ भी विषाणु, जीवाणु, कवक एवं पराजीवीजनित रोगों से ग्रसित हो सकती हैं। इन रोगों के होने पर किसान को अपनी कड़ी मेहनत द्वारा अर्जित उत्पाद के मूल्य पर भारी हानि उठानी पड. सकती है। इसलिये यह अत्यन्त जरुरी है कि मत्स्य कृषक मछलियों के रोगों एवं उनके निदान की कुछ जानकारी रखें ताकि विषम परिस्थितियों में उसका सूझबझ द्वारा निराकरण कर सकें ।

मछलियों में बीमारी प्रायः जीवाणुओं, फफूंदी या कवको तथा परजीवियों के प्रकोप से होती हैं। रोग जनित जीवाणुओं में एरोमोनास तथा स्यूडोमोनास, कवको में जलाशय के सेपरोलिग्निया, पीथीयम तथा एक्लेया और परजीवियों में आर्गुलस एवं प्रोटोजोआ प्रमुख हैं। इन रोगों से ग्रसित मछलियों का उपचार सम्भव है और रोग के लक्षण दिखने पर मछलियों का उपचार किया जा सकता है। उपचार के उपरान्त मछलियाँ पुनः स्वस्थ्य हो सकती हैं। इन रोगों के दौरान सुचारु रख रखाव की प्रकिया, नमक या पोटेशियम परमेंगनेट का स्नान उपचार एवं तालाब की सफाई से रोगग्रस्त मछलियों को काफी लाभ होता है ।

ठण्डे पानी की मछलियों में एक अन्य रोग का कारण है ''विषाणु''। विषाणु जनित रोगों का उद्‌भव तब होता है जब तालाब के पानी का तापमान 15 डिग्री सेल्सियस या उससे नीचे होता है। जैसा कि विदित है

के विषाणु जनित रोगों की रोकथाम के लिये टीके उपलब्ध होंगे, परन्तु इस प्रक्रिया में अभी समय लगेगा। इसके लिये हमारे कृषकों को अपने मछली फार्म को सुचारू रूप से व्यवस्थित रखने की जरूरत है जिससे कि विषाणु जनित रोगों से अपनी मछलियों को दूर रखा जा सके ।

शीतजल मछलियों में मुख्यतः इन्फेशियस पेनक्रियेटिक नेकरोसिस (infectious pancreatic necrosis) इन्फेशियस हीमेटोपोइटिक नेकरोसिस (infectious hematopoietic necrosis) एवायरल हीमोरेजिक सेप्टिसीमियॉ (viral hemorrhagic septicemia) और इपिजूटिक हीमेटोपोइटिक नेकरोसि (epizootic hematopoietic necrosis) में खतरनाक बिमारियों के कारक हो सकते हैं। इनका प्रकोप मुख्यतः रेनबो, ब्राउन एवं स्नो ट्राउट में देखा गया है। इसके अलावा कार्प मछलियों में भी विषाणु रोग का प्रकोप देखा गया है जिसे स्प्रिंग वायरेमियॉ ऑफ कार्प के नाम से जाना जाता है। इन सभी विषाणु जनित रोगों की प्रचण्डता हमेशा 15 डिग्री सेल्सियस से कम तपमान पर ही देखी गयी है।

विषाणु जनित रोगों के सामान्य लक्षण

- छोटी मछलियों का एकाएक भारी तादात में मरना यह क्रम 1 सप्ताह चलता है और सभी मछलियॉ प्रायः मर जाती हैं।
- मछली का भोजन न लेना तथा बेरूखा व्यवहार करना।
- शरीर का धीरे–धीरे काला पड़ना ।
- शरीर पर लाल रक्त जैसे निशान दीखना।
- मछली का बदहवास होकर तैरना तथा प्रतिक्रिया हीन हो जाना।
- अक्षु, पखमूल तथा क्लोम का रक्त रंजित हो जाना।
- कभी कभी पेट फटना और मल के रास्ते एक विशिष्ट स्राव होना । (Trailing fecal casts)

मछली के अंदरूनी अंगो में निम्न बाते देखी जा सकती हैं

- आमाशय में भोजन का अभाव।
- आतों में पीला गाढ़ा द्रव्य पदार्थ भरा होना।
- यकृत में धाव व सूजन होना।
- पित्त की थैली का सामान्य आकार से बड़ा होना।
- गुर्दे का अत्यधिक फैलाव।

दफनाए, यह स्थान नदी या जल स्रोत से दूर हो । मरी मछलियों को इधर–उधर न फैकें न ही पालतु जानवरों को दें, इससे रोग और स्थानो पर भी फैल सकता हैं । मरी मछलियों को मत्स्य भक्षी पक्षियों की पहुँच से भी दूर रखे ।

- बीमार/रुग्ण मछलियों को अन्य मछलियों अलग तालाब में रखें।
- जिस तालाब में रुग्ण मछलियॉ हो उस तालाब में प्रयोग की जाने वाली सभी वस्तुऐं दूसरे तालाब में न ले जाऐं । इससे बीमारी के फैलने का खतरा और बढ़ जाता हैं ।
- बीमार मछलियों के तालाब में पुनः मत्स्य बीज संचय करने से पहले तालाब को साफ करके सूखने दें तथा पोटेशियम परमैग्नेट दवा के घोल से धुलाई करें।

विषाणु जनित रोगो से कैसे बचे ?

- विषाणु हमेशा रोग विहीन स्वस्थ्य मत्स्य बीज का संचय करें।
- उत्तम गुणवत्ता का पर्याप्त मात्रा में सम्पूरक आहार दें।
- तालाब के पानी की गुणवत्ता बनाये रखें।
- आवश्यकता से अधिक बीज का संचय या आहार का व्यवहार न करें
- बाहरी मछलियों को तालाब में प्रवेश न होने दें।
- बाहरी व्यक्ति या पशुधन का आवागमन नियन्त्रित रखें।
- प्रत्येक माह जाल चलाकर मछलियों के स्वास्थ्य की जॉच करें।

मछली पकड़ने के उपकरण

एन.एन पाण्डेय, आर.एस पतियाल एवं प्रेम कुमार

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

मछली पकड़ने की तकनीक में मछली पकड़ने की विधि एवं इससे सम्बन्धित उपकरण दोनों सम्मिलित होते हैं। अर्थात किस प्रकार से मछली पकड़ी जाती है तथा किस प्रकार का उपकरण इसमें प्रयोग किया जाना है, सफलतापूर्वक मछली पकड़ने के लिए मछली के बारे में ज्ञान होना अति आवश्यक है। कुछ परिस्थितियों में मछलियों की भोजन की आदत को जानना महत्वपूर्ण होता है।

मछली पकड़ने के उपकरणों का उद्भव

आज के अधिकांश आधुनिक मछली पकड़ने के उपकरणों का विकास पूर्व में विकसित साधारण उपकरणों से हुआ है। इन उपकरणों का विकास निम्नलिखित घटक/कारक (Factors) पर निर्भर रहे है।

1. व्यवसायिक स्तर पर आखेट
2. गहरे पानी में मछली पकड़ना।
3. मछली पकड़ने के प्रयुक्त उपकरणों की क्षमता में विकास।

आदिकाल में मनुष्य नदियों झीलों एवं समुद्र के किनारे मछली एवं अन्य जलीय जीवों को हाथ से पकड़ता था। इसके अर्न्तगत वह केवल छिछले जल के तली वाले तथा धीमी गति से चलने/तैरने वाले जीवों को ही पकड़ पाता था। चारे का लालच देकर मछली पकड़ने की विधि से काँटे एवं बन्सी का विकास हुआ। इसमें चारे को इस प्रकार काँटे में लगाया जाता है कि मछली चारे को न तो लेकर भाग पाती और न ही एक बार चारे को मुँह में लेकर छोड़ सकती है। विभिन्न प्रकार की वन्सी व काँटे का प्रयोग किया जाता है जिससे सबसे सरल हाथ से प्रयोग किया जाने वाला है। अधिकांश आदि कालीन मछली पकड़ने के उपकरणों का प्रयोग छिछले पानी में ही किया जाता था।

तदपश्चात तेज गति से चलने व तैरने वाले जीवों को पकड़ने के लिए उनको मशीनों, रसायनों एवं

लकड़ी के चौखट में जाल बाँधकर मछली पकड़ी जाने लगी। इस प्रकिया में चौखट में जाल बाँधकर उसी पानी को छानते हुए चलकर मछली पकडी जाती है। जालों के विकास से अधिक क्षेत्र से अधिक मछली पकड़ना सम्भव हो सका। इसमें पानी को क्षेत्र को चारों तरफ से घेर कर छोटा करते जाते हैं जिससे मछलियां जाल में फँस जाती हैं। इनमें ड्रेग नेट प्रमुख है। जिन जगहों में अधिक मछलियां होती हैं, वहाँ स्कूप नेट या लिफ्ट नेट का प्रयोग प्रारम्भ हुआ इसमें मछलियों में झुन्ड के नीचे से लकड़ी के फ्रेम में बंधा सिल्वर जाल को ऊपर की तरफ उठाया जाता है जिससे इसके ऊपर रहने वाली मछलियां जाल में आने पर इसमें फँस जाती हैं। बहते हुए पानी में व्यवसायिक दृश्टि से महत्वपूर्ण मछलियों को पकड़ने के लिए गिल नेट का विकास किया गया। इसमें जाल को नदी की धारा के बीच उर्ध्वाधर लगाया जाता है। इस के सामने आने वाली मछली इसमें फँस जातीं हैं। इससे मछली घायल भी नहीं होती।

मछली पकड़ने के विभिन्न उपकरण

मछली पकड़ने के उपकरणों को मुख्यतः मछली पकड़ने की विधियों के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

1. **उपकरण रहित** :– जैसे कि हाथ से पकड़ना, पैर से पकड़ना एवं साधारण औजारों के प्रयोग द्वारा मछली पकड़ना।
2. **पकड़ने व घायल करने वाले उपकरण** :– इसमें मछलियों को जकड़कर, दबाकर, छेदकर, डराकर एवं घायल कर पकड़ा जाता है। इसके लिए काला क्लेम्प, टौग, रैक, हारपून आदि यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।
3. **भागने व सुन्न करने वाले उपकरण** :– इसमें मछलियों को हक्का–बक्का करके, बेहोश करके एवं सुन्न करके भागने से रोककर पकड़ा जाता है। इसके लिए यान्त्रिक, रासायनिक, विद्युतीय विधियों का प्रयोग किया जाता है।
4. **काँटे एवं बन्सी** :– इसमें मछलियों को चारे का लालच दिया जाता है तथा एक बार चारे को मुँह में लेने पर वह भाग नहीं पाती।
5. **ट्रेप** :– इसमें इस प्रकार के उपकरण का निर्माण किया जाता है कि मछली इसमें आ तो अपने आप जाती है परन्तु इसकी बनावट के कारण इससे बाहर नहीं जा पाती तथा पकड़ ली जाती है।
6. **ऐरियल ट्रेप** :– जिन मछलियों को मार्ग में बाधा होने पर पानी से बाहर कूदने पर विशेष प्रकार के ट्रेप में कैद हो जाती हैं।
7. **बैग नेट** :– इस प्रकार के जाल एक फ्रेम में बंधे होते हैं जिनका

9. **सीन नेट** :– इस जाल में ऊपर व नीचे खींचने वाली रस्सी बँधी होती है। इसमें एक छोर को एक आधार से बाँधकर दूसरे सिरे को खींचकर एक पानी में निश्चित क्षेत्र को घेरकर उस क्षेत्र में मछलियों को पकड़ा जाता है।

10. **घेरने वाला जाल** :– इसमें मछलियों के झुंड को एक गठरीनुमा आकार में नीचे से भी घेर कर पकड़ा जाता है।

11. **लिफ्ट नेट** :– इसमें जाल को पानी में नीचे डुबाया जाता है तथा जब मछलियों का झुंड इस के ऊपर से तैरता है तो इसे ऊपर की तरफ उठाकर मछलियों को पकड़ लिया जाता है।

12. **फालिंग नेट** :– इसमें छिछले पानी में मछलियों के ऊपर से जाल को डालकर मछलियों को पकड़ा जाता है।

13. **गिल नेट** :– इसमें मछलियों को जाल में फन्दों में फसाकर पकड़ा जाता है।

14. **ट्रेमल नेट** :– इसमें मछलियों को उलझा कर पकड़ा जाता है।

फेंका जाल

कॉटा एवं वन्सी

'सजीव मत्स्य जीन बैंक' मत्स्य पालन एवं मत्स्य संरक्षण के बीच कड़ी की भूमिका में

आर.एस. पतियाल एवं पी.सी. महन्ता

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

मत्स्य पालन एवंम संरक्षण का इतिहास बहुत पुराना हैं, अभिलेखों में 2500 वीसी पूर्व इजिप्ट में 2000 वी सी पूर्व चीन में मत्स्य पालन का वर्णन मिलता है। इन देशों के प्रर्वसन काल में मत्स्य पालन का प्रसार एशिया पूर्व देशों मलेशिया, इण्डोनेशिया तथा थाईलैण्ड आदि देश में हुआ, कौटिल्य के अर्थशास्त्र 321–300 बीसी में भारत उपमहाद्वीप में मत्स्य पालन का जिक्र आता है, विभिन्न राजाओं ने अपने समय काल में मंदिर के पास नदी तालाबों में मत्स्य पालन एवं संरक्षण करने का अस्तित्व का भी उल्लेख मिलता है। सन् 1841 तथा 1865 में विदेशी मत्स्य प्रजाति के निवेशन के प्रयास इस बात के सूचक हैं कि कैप्टिव प्रजनन समूह पूर्व काल में भी विद्यमान रहा होगा। मद्रास मत्स्य विभाग द्वारा प्रथम बार 1911 में सुनकेसुला नामक स्थान में वैज्ञानिक ढंग से प्रथम फार्म की स्थापना कर प्रजनन, मत्स्य आहार, मत्स्य पालन सम्बन्धी विभिन्न विषयों में अध्ययन प्रारम्भ किया।

परम्परागत मत्स्य पालन में नदियों से बीज संगह कर तालाब में छोड़ना, मत्स्य पालन करना बंगाल में काफी प्रचलित थी परन्तु बाद में मत्स्य बीजों के परिवहन में आक्सीजन के प्रयोग से मत्स्य – बीज सुलभ हुआ। धीरे – धीरे सभी क्षेत्रों में मत्स्य पालन का प्रसार हुआ। 1949 में कटक में सीफरी के अन्तर्गत मत्स्य पालन विभाग की स्थापना तथा पिट्टूटरी हारमोन की खोज के बाद मत्स्य पालन में क्रान्तिकारी विकास हुआ। इसके साथ ही बीज उत्पादन क्षेत्र में संस्थागत संस्थानों की भागीदारी भी शुरू हो गयी। इस तरह मत्स्य पालन द्वारा मत्स्य संसाधन का संग्रह हुआ जो संरक्षण के अभिप्राय को सार्थक करते है। मत्स्य उत्पादन का तकनीकी विकास से भारतीय कार्प के साथ–2 विदेशी कार्पो के संयुक्त मछली पालन से मत्स्य उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई। फलतः मत्स्य पालन एक उद्योग के रूप में विकसित होने लगा, लेकिन उसी अनुपात में एक तरफ मछलियों के पालन योग्य प्रजातियों की

पहुंच गये हैं जिसका निदान अतिशीघ्रातिशीघ्र आवश्यकीय है। अब समय आ गया है कि प्रभावित प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ मत्स्य संसाधन का डोमेस्टीकेशन किया जाय, मत्स्य पार्को की स्थापना, मत्स्य अभ्यारण्य की स्थापना, कर मत्स्य संपदा की सुलभता को सुनिश्चित किया जाए ताकि प्रजनन एवं सरंक्षण की तकनीकी विकास में तीव्रता से कार्य किया जा सके। संरक्षण की दिशा में विभिन्न संस्थान अपने स्तर से कार्य कर रहे है तथापि प्रायः शोध कर्ताओं को उचित समय से लुप्त प्रायः मछलियों की प्राप्ति में कठिनाईयाँ आती है, जिससे कहीं न कहीं संगठित शोध एवं उसकी निरन्तरता प्रभावित होती है। प्राकृतिक स्रोतो से यह आवश्यक नहीं है कि आपको जब चाहे मछलियाँ उपलब्ध हो जाये, मछलियों के संग्रहण में समय एवं धन की बरबादी होती है। उससे और अहम् बात है कि जब तक हम कोई उचित प्रौद्योगिकी का विकास करे तब तक प्राकृति से बहुत सारे मछलियाँ ही लुप्त न हो जाये। यह सारी परिस्थितियाँ एक नयी व्यवस्था के सजृन हेतु बाध्य करती है। इसी परिकल्पना के सापेक्ष में वर्तमान परिवेश पर आधारित एक बहुआयामी परिकल्पना पर आधारित कार्यक्रम आरम्भ किया गया है जिसे 'सजीव मत्स्य जीन बैंक' नाम दिया गया है। इस परिकल्पना तथा कार्यक्रम को निम्न रेखाचित्र के माध्यम से समझा जा सकता है।

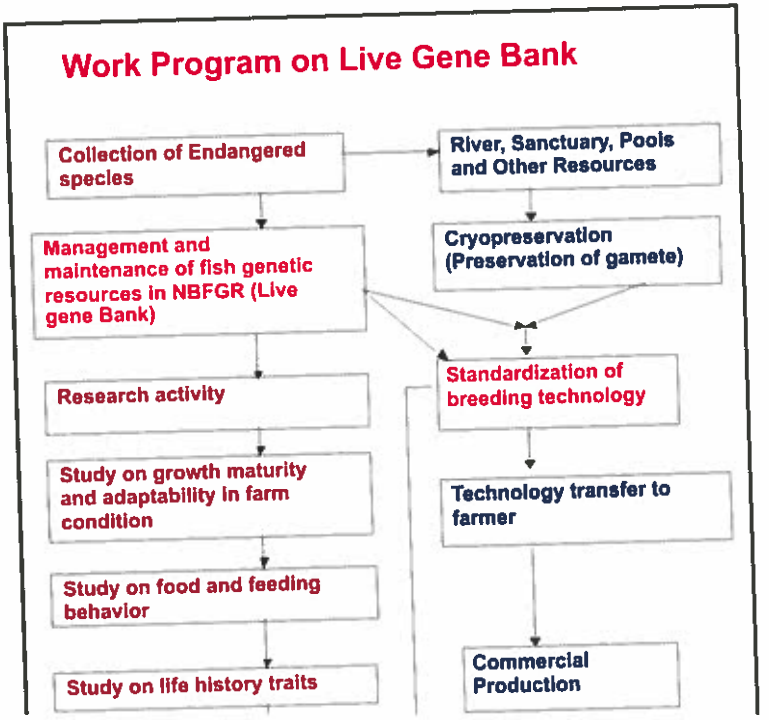

उद्देश्य

लाईव जीन बैक के उद्देश्य एवं कार्यक्रम को प्राथमिकता के आधार पर विभाजित किया गया है

लघुकालिक उद्देश्य

- लाईव जीन बैंक हेतु फार्म की स्थापना, तथा अन्य सुविधाओं को जुटाना ।
- प्राकृतिक वास से संकटापन्न मछलियों का संग्रहण कर स. म. जी. बैंक में अनुकूलनता प्रदान करना।
- प्रचार प्रसार द्वारा इसके उपयोगिता, आवश्यकता हेतु जनमत, वैज्ञानिक मत बनाकर संसाधन जुटाना, प्रारम्भिक अध्ययन के तौर पर अनुकूलनता, आहार, वृद्धि, जीवितता, प्रजनन क्षमता आदि विषयों पर अध्ययन करना ।

दीर्घकालिक उद्देश्य

- भविष्य में मास प्रजनन हेतु लुप्त प्राय मछलियों के ब्रूडर का निर्माण एवं संरक्षण करना।
- लुप्त प्राय मत्स्य संसाधन के *इन सिटू* एवं *एक्स सीटू* संरक्षण एवं प्रबंधन, में महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में भूमिका निभाना।
- शुद्ध मत्स्य जेनेटिक स्टाक का संरक्षण।
- लुप्तप्राय मछलियों के जीवन चक्र का अध्ययन।
- लुप्त प्राय मत्स्य प्रजातियों के प्रजनन तकनीकी का विकास कर मत्स्य बीज उत्पादन करना।
- शोध हेतु वैज्ञानिकों, शोधार्थियों को मछलियां उपलब्ध करना।
- प्रकृति के नदी, झीलों, तालाबों में मत्स्य बीज का रांचिग (पुर्नस्थापना) कर राष्ट्रीय मत्स्य संसाधन का संवर्धन करना।
- मत्स्य किसानों हेतु व्यापारिक प्रतिस्पर्धात्मक मत्स्य का चयन कर मत्स्य पालन हेतु नयी प्रजाति को शुलभ कराना।
- पूरे भारत वर्ष में जगह–जगह में वातावरणीय विभिन्नता एवं अनुरूपता के अनुसार इसकी स्थापना करना ।

सजीव मत्स्य जीन बैंक में परीक्षण एवं आकलन

सजीव मत्स्य जीन बैंक हेतु प्रारंभ में एन.बी.एफ.जी.आर. के 12 तालाबों में कार्य किया गया, जिनका आकार एवं क्षेत्रफल भिन्न–भिन्न है।

स. म. जी. बैंक की शुरुआत एक तालाब से की गई, सर्वप्रथम गंगा नदी से भारतीय कार्प मछलियों का संग्रहण किया गया, तत्पश्चात विभिन्न नदियां एवं झीलों से चिताला–चिताला, चन्ना मारुलियस, वलैगो अटटू नोटोप्टेरस–2, सिंघी, मांगुर, लेबियो बाटा, महाशीर, लेबियो डायोकोलस, बेरीलियस आदि मत्स्य संपदा संग्रह किया। विभिन्न तालाबों में आहार आदतों के अनुसार मछलियों को व्यवस्थित किया गया, तथा भारतीय तथा विदेशी कार्प मछलियों का संयोजन आवश्यकतानुसार किया गया।, एक से दो वर्षो के बीच में विभिन्न मछलिया औसतानुसार वृद्वि करने लगे तथा नये वातावरण में अनुकूलनता एवं परिपक्वता परीलक्षित होने लगी। परिणामस्वरुप प्राकृतिक आवासों से संग्रहित भारतीय मेजर कार्प के साथ–साथ अन्य मछलियॉ का सफलतापूर्वक प्रजनन कराया गया तथा प्रजनित नये मछलियों का रीयरिंग भी अबाध रुप से सफल रहा। मुख्यतः प्राकृतिक आवासों से संकलित चन्ना मारुलियस, नोटोप्टेरस, लेबियो कालबासू, लेबिया बाटा, वेरीलिस बेन्डलिसिस, मॉगूर, सिंघी, चन्ना पंक्टेटस आदि प्रजातियों में नर मादा दोनों में परिपक्वता पायी गयी, तथा इन मछलियों का प्रायोगिक प्रजनन भी सफल रहा। इण्डैजर्ड चिता, ला, महाशीर मछलियो का सफलता पूर्वक रीयरिंग किया गया। परिस्थितिकीय दृष्टि से तालाबों का जलीय वातावरण निम्न रहा है। तापमान–न्यूनतम 17 तथा 35 डिग्री सेन्टीग्रेट, पी. एच. 7 से 8.5, ट्रान्सपरेन्सी 30 से 35 सेमी0, डी. ओ. 4.2 से 7.8 पी.पी. एम, औसत फ्री बव 2–0 से 4 पी.पी. एम तथा टोटल एलकैनिटी 80–110।

सजीव मत्स्य जीन बैंक मैं कुछ मुख्य मत्स्य प्रजातियो की परिपक्वता तथा प्रजनन की स्थिति

प्रजाति का नाम	परिपक्वता स्थिति		प्रजनन प्रयोग
	नर	मादा	
टार पुटीटोरा	हॉ	नही	नही किया
लेबियो डायचिलस	हॉ	हॉ	किया
चन्ना मारूलियस	हॉ	हॉ	किया
लेबिया बाटा	हॉ	हॉ	नही किया
चिताला चिताला	नही	नहीं	नही किया
लेबियो कालबासू	हॉ	हॉ	किया
लेबिया रोहिता	हॉ	हॉ	किया
कतला कतला	हॉ	हॉ	नही किया
सिरहिनस मृगाला	हॉ	हॉ	किया
वलैगो अटटू	नही	नही	नही किया

वाद एवं निष्कर्ष

प्रारम्भ में स. म. जी. बैंक की उपयोगिता एवम् सार्थकता के प्रश्न चिन्ह के साथ–साथ उत्साहवर्धक सहयोग भी प्राप्त हुये, संशय भी जताया गया कि मछलियों कों इकट्ठा कर क्या करेंगे। तो– ऐसी स्थिति में कार्य को आगे बढ़ाना तथा वैज्ञानिक मत बनाना एक चुनौती थी। धीरे–धीरे जब विभिन्न जगह की मछलियां एक जगह पर इकठ्ठे की गई तो व्यवहारिक परिणाम आने लगे तथा मछलियां नये वातावरण में अनुकूलता ग्रहण कर अपनी जिजीविषा प्रदर्शित करने लगी जिससे संरक्षण के प्रयास में प्रारम्भिक सफलता परिलक्षित हुई। उदाहरण के लिए जैसे ठंडे जल का महासीर मछली का मीठा जल में अनुकूलता ग्रहण करना। प्रथम वर्ष में ठंड़े जल की मत्स्य प्रजातियों का 35°C तक के तापमान में अनुकूलता ग्रहण करने की क्षमता से उत्साहपूर्ण सार्थकता सिद्ध होने लगी, इसी क्रम में विभिन्न मछलियों में सम्यक वृद्धि दर, द्वितीय वर्ष में कई मछलियों के नर तथा मादा के द्वारा परिपक्वता हासिल करना, तथा सफल प्रजनन से एक बार पुनः स. म. जी. बैंक कार्यक्रम की परिकल्पना में स्पष्टता दिखाई देने लगी।, तृतीय वर्ष तक लगभग 9 मछलियों ने तालाबीय अवस्था में ही अपना जीवन चक्र पूर्ण किया, तथा विशिष्ट एवं एकल प्रबंधन के प्रयास के अभाव में भी टार प्यूटीटोरा, चिताला, चन्नमारूलियस ने रोहू (600 से 700 ग्राम) के सापेक्ष में 300 से 700 ग्राम तक की वृद्धि दर्ज की है जो इस बात के सूचक हैं कि आने वाले समय में इन मछलियो का व्यावसायिक उत्पादन किया जा सकता है। इस तरह कई मछलियों के वृद्वि दर तथा परिपक्वता की उत्तरदायित्व से इसकी सफलता पूर्ण रूप से साबित होती है। इसके अतिरिक्त स. म. जी. बैंक समय–2 पर विभिन्न प्रयोगशलाओं को पैथोलोजिकल/प्रेस्टोलोजिकल तथा क्रायोप्रीजरवेसन आदि कार्य के लिए जीवित मछली सुलभ करायी गयी।, स. म. जी. बैंक में किये गये प्राथमिक प्रयासो का समग्र विवेचन करना इस परिचय लेख सम्भव नही है। इस तरह,छोटी सी अवधि में सजीव मत्स्य जीन बैंक संरक्षण के दिशा में एक प्रेरक सूचकांक की भाति कार्य कर रहा है। समय के साथ–साथ अल्पावधि में स. म. जी. बैंक की उपयोगिता तथा अवधारणा तेजी से लोंगों को समझ में आने लगी। एन. ई. परियोजना के तहत गुवाहटी में जीन बैंक खोले जाने से इस परिकल्पना को और विस्तृतता मिली, वहां वर किये गये कार्यो से उस क्षेत्र में और सजीव मत्स्य जीन बैंक खोले जाने की मांग आने लगी।

यद्यपि मत्स्य पालन योग्य नये मछलियों को प्रादुर्भाव न होने के कारण विभिन्न हो सकते है तथापि असंगठित प्रयास तथा चरण बद्व प्रयासों के अभाव को दूर करने में स. म. जी. बैंक की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। नये पालने योग्य मछलियों को चिन्हित किया जा सकता है। इन सिटू तथा एक्स सिटू संरक्षण के दिशा में स. म. जी. बैंक का अतिमहत्वपूर्ण योगदान हो सकता है क्योंकि स. म. जी. बैंक की उत्तरदायित्वता के आधार पर एक तो हम प्राकृतिक आवासों में रान्चिंग कर मछलियो का संरक्षण कर सकते है तथा दूसरे तरफ एक्स सिटू सरंक्षण के दिशा में मत्स्य जनन द्रव्यों की आवश्यकता को सनिश्चित कर

प्रजाति को मत्स्य पालन की प्रकिया में स्थापित कर पाये तों इससे अधिक सफलता की सीमा संरक्षण की दिशा में नही हो सकती अर्थात स. म. जी. बैंक संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण विकल्प है। अतः आज आवश्यकता है पूरे भारत में फैले मत्स्य संसाधन का संरक्षण संवर्धन एवं प्रजनन कर, आम आदमी तक नयी प्रजाति सुलभ हो ताकि मत्स्य सम्पदा की उपयोगिता बढ़े। राष्ट्रीय स्तर पर वातावरणीय मानचित्रानुसार तथा उपलब्ध प्रजाति के अनुसार आज के परिवेश लाईव जीन बैंक खोलना अपरिहार्य है, ताकि मत्स्य सम्पदा को ह्रास होने से बचाया जा सकें। शीतजल मछलियों के संरक्षण, संवर्धन एवं पालन को बढ़ावा देने हेतु इन क्षेत्रों में सजीव जीन बैंक की स्थापना करना जरूरी है।

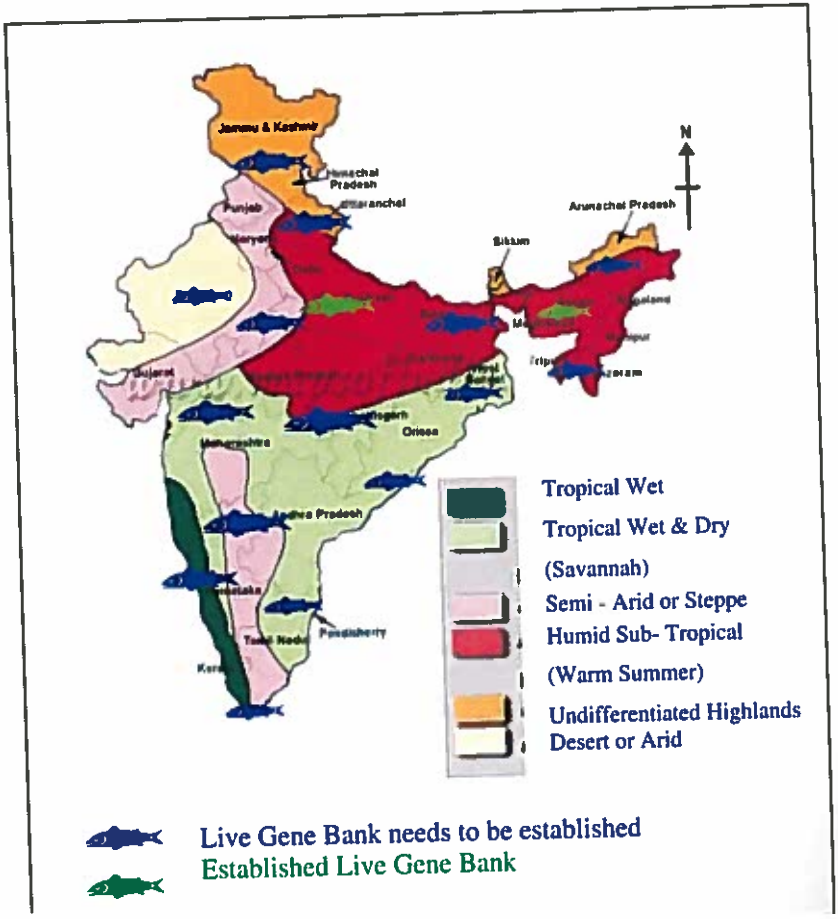

पहाड़ों पर मछली पालन को नई दिशा प्रदान करता छीड़पानी प्रायोगिक मत्स्य प्रक्षेत्र, चम्पावत

रवीन्द्र कुमार एवं हन्सा दत्त

छीड़ापानी शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय केन्द्र
चम्पावत, (उत्तराखण्ड)

देवभूमि उत्तराखण्ड के प्रवेश द्वार में स्थित 1997 से पूर्व जिला पिथौरागढ का भाग था। स्थानीय लोगों के प्रयासों के उपरान्त 1997 में उत्तर प्रदेश तत्कालीन सरकार ने पिथौरागढ से प्रथक कर चम्पावत जिले का निर्माण किया गया। भौगोलिक रूप से चम्पावत जिले को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जाता है।

1. पर्वतीय क्षेत्र– पर्वतीय क्षेत्र जो शिवालिक श्रेणी में आता है इस क्षेत्र की समुद्र तल से ऊँचाई लगभग 1400–1700 मीटर तक है। इस क्षेत्र के अन्तर्गत बाराकोट, लोहाघाट, मायावती आश्रम, चम्पावत, पाटी, देवीधुरा खेतीखान, मिंड़ार, मछियाड़, सुखीढ़ाँग, मंच आदि क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र की जलवायु ठंडी होने के कारण यहां पर किसान मत्स्य पालन कर विदेशी कार्प प्रजाति की पछली का पालन कर अपना अतिरिक्त लाभ प्राप्त कर सकते हैं साथ ही मत्स्य पालत के लिए बनाये गये तालाबों का उपयोग सब्जी उत्पादन में भी कर सकते हैं। पर्यावरण की दृष्टि से यह क्षेत्र काफी संवेदनशील माना जाता है। यहॉ के लोगों की आजीविका मुख्य रूप से मौसमी खेती के उपर निर्भर है। स्थानीय अर्थव्यवस्था मनिआर्डर पर भी बहुत निर्भर करती है। पहाड़ की मूल्यवान जल एवं नौजवान दोनों ही पहाड़ से आर्थिक विकास में सम्पूर्ण रूप से सहभागी नहीं बन पाते हैं। क्योंकि यहां पर रोजगार के साधनों की कमी एक महत्वपूर्ण समस्या है। इन क्षेत्रों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का वैज्ञानिक रूप से उपयोग कर पहाड़ वासियों के आजीविका निर्वाहन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसी के मध्य नजर भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् नई दिल्ली द्वारा चम्पावत से 7 किमी की दूरी पर स्थित छीड़ापानी नामक स्थान पर वर्ष 1988 में शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान केन्द्र की स्थापना की गयी और वर्ष 1992 से विभिन्न प्रकार की मछलियों का पालन एवं शोध कार्य निरंतर चलता आ रहा है। और साथ ही वर्ष 1994 से पर्वतीय के मत्स्य पालकों को तकनीकी

2. घाटी क्षेत्र– इस क्षेत्र के अन्तर्गत पनार घाटी से अलग करता हुआ घाट, पंचेश्वर, वेलखेत, रीठा साहिव, आदि क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र में उत्तर की ओर सरयु नदी पूर्व की ओर भारत और नेपाल को अलग करने वाली काली नदी और पश्चिम में लधिया एवं क्वैराला नदियॉ बहती हैं। काली नदी विशेष रूप से सुरहरी महाशीर विशिष्ठ निवास स्थान है और साथ ही इसमें असेला मछली भी प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। अन्य नदियों में काली नदी से जुडे होने के कारण इन नदियों में भी सुनहरी महाशीर और असेला पाई जाती है। इस क्षेत्र की जलवायु कुछ गर्म होने के कारण यहॉ के किसान देशी व विदेशी प्रजाति की कार्प मछलियॉ पाल सकते हैं।

3. भाबरी क्षेत्र– इसके अन्तर्गत टनकपुर, बनबसा का क्षेत्र आता है, जिसके अन्दर्तग नैपाल और भारत को अलग करने वाली शारद नदी है। शारदा नदी में विशेष रूप से सुनहरी महाशीर, असेला पायी जाती है। इसके अलावा देशी और विदेशी प्रजाती की कार्प मछलियाँ किसानों द्वारा पाली जा सकती हैं। जिससे की वहां के लोग अतिरिक्त आय भी कमा सकते हैं।

पूरे प्रक्षेत्र की विस्तृत जानकारी इस प्रकार है।

खण्ड क : ट्राउट प्रक्षेत्र

रेनबो ट्राउट– हमारे चम्पावत केन्द्र के द्वारा रेनबो ट्राउट का पालन व प्रजनन किया जाता है। रेनबो ट्राउट पूरी तरह से मांसाहारी मछली है। यह अपने साथ किसी भी दुसरी मछली को नहीं रहने देती है उसके मुह की साईज की जो भी अन्य मछलियां मिलती हैं उन सब को खा जाती है इसलिये इसको संस्थान द्वारा कृत्रिम भोजन से पाला जा रहा है। इसके कृत्रिम भोजन में 50 प्रतिशत मछली का चूरा, 25 प्रतिशत सोयाबीन का आटा, 20 प्रतिशत गेहूं का आटा, 5 प्रतिशत अन्य तन्व मिलाकर बनाया जाता है। उसके बाद जब मछली 2 वर्ष की होती है तब इसका कृत्रिम प्रजनन के लिये वयस्क मछलियों का चयन जनवरी प्रथम सप्ताह में करते हैं। जो वयस्क मछलियों में जो नर होता है उसका शरीर व पंख खुरदुरे होते हैं, शरीर का रंग हल्का भूरा काला तथा नीचे के जबड़े में चम्मच के आकार का हुक विकसित होता है। मादा मछलियों का शरीर मुलायम, रंग सुनहरा गहरा काला, भूरा होता है। प्रजनन पूर्व प्रजनकों की देखभाल 2–3 माह पूर्व से आरम्भ कर दी जाती है इस दौरान इनके खाद्य एवं रेशवे में संचय घनत्व पर विशेष ध्यान दिया जाता हैं। वैज्ञानिक शोधों के अनुसार आहार में थोड़ा प्रोटीन की कमी से प्रजनक अच्छे तैयार हो जाते हैं।

कृत्रिम प्रजनन एवं हैचरी प्रबन्धन विधि

1. सर्वप्रथम प्रयोग में आने वाले प्लास्टिक अथवा इनेमल टपों और ट्रे हैचरी, जाल, आदि को पोटास के घोल में खुब अच्छी तरह साफ कर धुप में सुखा देते हैं।

से धीरे–धीरे नीचे को दबाते हैं इससे मिल्ट पेट से पिचकारी की तरह निकल आते हैं। फिर चिंड़िया के मुलायम पंख आदि से मिल्ट और अण्डों को मिला देते हैं उसके बाद निषेचित अण्ड़ों का 5–7 मिनट तक ढ़ककर रखा जाता हैं। फिर उसके बाद अण्डे वाली ट्रे को चलते हुए पानी में साफ करते हुऐ उसका मिल्ट एवं अन्य गन्दगी को बहा दिया जाता हैं। इस प्रक्रिया को निषेचन कहते हैं।

4. निषेचन के तत्पश्चात अण्डों को टपों में लगी हुई ट्रे में धीरे–धीरे अण्डों को छोड़ दिया जाता है, एक ट्रे में 2000–2500 तक अण्ड़े छोडे जाते हैं, इसके अण्ड़े सुनहरे, पीले और मटर के दानों से थोड़े छोटे होते हैं।

5. प्रतिदिन ट्रे की सफाई की जाती है उसमें से खराब अण्ड़े एवं अन्य गन्दगी को निकाल दिया जात है। सामान्य पानी के तापमान (4–16°c) पर यह प्रक्रिया लगभग 40–42 दिन तक चलती है जिससे अण्डसंवर्धन कहते हैं।

1. **नर्सरी टैंक**– छीड़ापानी प्रक्षेत्र में नर्सरी टैंकों की कुल संख्या 10 है। जिनकी लम्बाई 10 मीटर, चौड़ाई 3मीटर और गहराई 1 मीटर है। प्रत्येक टैंक में 50 से 100/घन मीटर तक बच्चों को पाला जा सकता है।

2. **रेसवे टैंक**– रेसवे टैंकों की कुल संख्या 6 है। जिनकी लम्बाई 30 मीटर, चौड़ाई 5मीटर और गहराई 1 मीटर है। रैनबो ट्राउट मछलियों को प्रत्येक टैंक में 5 से 7/धन मीटर के हिसाब से डाला जाता हैं।

3. **ट्राउट हैचरी**– ट्रउट हैचरी की संख्या 1 है। ट्रउट हैचरी की कुल क्षमता 1लाख ओबाएक्स होते हैं।

4. **कार्प हैचरी**– कार्प हैचरी की संख्या 1 है।

खण्ड़ ख : रेसवे तालाब

रेसवे टैंकों की कुल संख्या 10 है। जिनकी लम्बाई 30 मीटर, चौड़ाई 5 मीटर और गहराई 1.5 मीटर है। इन तालाबों का तापमान सामान्यतः खण्ड़ (क) से अधिक रहता है इसलिए यहॉ पर कार्प प्रजाति की मछलियों का अनुसंधान किया जाता है। जिसमें प्रत्येक टैंकों में आवश्यकतानुसार मछलियों का संचय किया जाता है और संतुलित भोजन उपलब्ध कराया जाता है। प्रायः यह देखा गया है कि एक तालाब में अधिक मछलियॉ होने पर उनके आहार में कमी आ जाती है और उनकी बड़वार कम होती है इसलिए इनकी बड़वार को बढ़ाने के लिए 3–5 मछली 1 वर्गमीटर में रखा जाता है जिससे उनकी बढ़वार ठीक–ठाक हो जाती

हिमालय क्षेत्र में सुनहरी महाशीर का आणविक एवं शारीरिक विभिन्नताओं का अध्ययन

ज्योति सती एवं रोहित कुमार

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

सुनहरी महाशीर व्यावसायिक दृष्टि से हिमालय क्षेत्र की अति महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजाति है। पिछले कुछ समय से मनुष्य हस्तक्षेप, प्रदूषण, अत्यधिक दोहन तथा अन्य भोगौलिक कारणों से यह मछली प्रजाति विलुप्त होने के कगार पर है। इसलिए हिमालय क्षेत्र में इस प्रजाति के संरक्षण हेतू इस मछली प्रजाति का वितरण एवं आनुवांशिक सम्बन्धी अध्ययन अति आवश्यक है। क्योंकि आनुवांशिक गुणों के आधार पर प्रजनन के लिए मछली प्रजाति का चयन उसके संरक्षण एवं विस्तार के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

महाशीर

पिछले कुछ समय से शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान में Fish Gebntic Stock (ICAR) क्रार्यक्रम के अर्न्तगत इस मछली को वितरण एंव आनुवाशिंक सम्बन्धी अध्ययन किया जा रहा है। इस क्रार्यक्रम के अन्तर्गत सात विभिन्न भागौलिक क्षेत्रों (जिया बोरोली नदी, अरूणाचल प्रदेश, सतलुज एवं बियास नदी,

गुणों की खान है-नमक

डी. डी. ओझा

एवं विज्ञान लेखक संभवतः नमक, एक प्रकृति का ऐसा उपहार है जिसकी जरूरत न केवल मानव वरन् मवेशियों को भी होती है। पृथ्वी पर प्रारंभिक जीव–जंतुओं का विकास सागर के लवणीय जल में ही हुआ। अतः नमक, पृथ्वी के प्राणियों की एक बुनियादी आवश्यकता है।

नमक से संबंधित शहरों के नाम तथा मुहावरे भी हमें सुनने को मिलते हैं। बिना नमक के भोजन भी स्वादहीन लगता है। वस्तुतः नमक, फारसी भाषा का शब्द है। संस्कृत भाषा में इसे लवण कहते है। इसी से लोष, लोना, लोनी, लोनिया आदि शब्द बने हैं। नमक के विभिन्न भाषाओं में नाम भी अलग–अलग हैं। यथा– बंगला–निमोक या नून, मराठी–मीठ, गुजराती–मिठु, तमिल, कन्नड़–उप्पू, राजस्थानी–लूण।

लवण या नमक को मूल्यवान एवं उपयोगी वस्तु माना गया है। वैदिक साहित्य में अथर्ववेद में नमक के बारे में जानकारी का उल्लेख मिलता है। जहॉ इसे गंडमाला (Goitre) के निवारण के लिए उपयोगी बताया गया है। महर्षि पाणिनी ने लवण को एक पण्य वस्तु बताया है और इसका व्यापार करने वाले को लावणिक कहा गया है। इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में सैंघप (सिंधा), सामुद्रक (समुद्री जल से बना), पवित्रम (पाक द्वारा बनाया गया), सौवर्चल, यवक्षार आदि कई प्रकार के लवणों का वर्णन किया गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्री से विदित होता है कि मौर्यकाल में नमक के उत्पाद और वितरण पर नियंत्रण रखने के लिए लवणाध्यक्ष नामक अधिकारी नियुक्त किया जाता था। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि नमक उत्पादन के लिए शासन से अनुज्ञापत्र भी प्राप्त करना पड़ता था। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने नमक पर ब्रिटिश सरकार द्वारा लगाए गए अत्यधिक कर के विरोध में सन् 1930 में नमक सत्याग्रह रूपी जनांदोलन किया। इसके फलस्वरूप ही भारतवासियों को नमक पर राहत मिली ।

नमक उत्पादन करने वाले देशों में भारत का नाम तीसरे नंबर पर है। विश्वभर में प्रतिवर्ष लगभग दो लाख मैट्रिक टन से भी अधिक नमक का उत्पाद होता है। हमारे देश में सर्वाधिक नमक गुजरात, तमिलनाडु और राजस्थान में उत्पादित होता है। नमक, जिसे रासायनिक भाषा में सोडियम क्लोराइड कहते हैं, एक विशिष्ट स्वादवाला, मृदु एवं अत्यधिक जलविलेय यौगिक है। इसमें 39.4 प्रतिशत सोडियम और 60.6 प्रतिशत क्लोरीन होती है। नमक में मैग्नीशियम क्लोराइड की उपस्थिति के कारण ही यह आर्द्रता या नमी

कुछ खाद्य पदार्थों– मांस, अंडा, दूध, दुग्ध पदार्थों, सब्जियों, अनेक दवाइयों में प्रचुर मात्रा में सोडियम पाया जाता है। अतः भोजन में यदि नमक का सेवन नहीं किया जाता तो भी सामान्य परिस्थितियों में शरीर में सोडियम की कमी होने की आशंका नहीं रहती है।

सोडियम, क्लोराइड तथा कैल्सियम कोशिकाओं के बाह्य द्रव और पोटैशियम, मैग्नीशियम, फॉस्फेट कोशिकाओं के आंतरिक द्रव के प्रमुख तत्व होते हैं। रक्त में सोडियम का स्तर लगभग 140 मिली मोल प्रति लीटर होता है। रक्त और कोशिकाओं के बाह्य द्रव में इसके स्तर का सामान्य बने रहना अति आवश्यक है। रक्त में इसके स्तर को नियंत्रित करने के लिए अनेक प्रकियाएं होती है। कुछ हार्मोनों की सहायता से रक्त में सोडियम के स्तर को गुरदे नियंत्रित करते है। तथा जब किसी कारणवश रक्त में सोडियम को स्तर बढ़ने लगता है तो गुरदों द्वारा सोडियम की अतिरिक्त मात्रा को मूत्र से बाहर निकाल दिया जाता हैं। स्वस्थ मनुष्य में भोजन के द्वारा जितना सोडियम शरीर में पहुँचता है, लगभग उतना ही मूत्र के द्वारा शरीर से निष्कासित कर दिया जाता है। इस प्रकार रक्त और शरीर में सोडियम का संतुलन बना रहता है।

नमक के उपयोग

भावनगर स्थित सीएसएमसी आरआई, संस्थान ने समुद्री जल से नमक उत्पादन कर लेने के पश्चात् बचे हुए बिटर्न से जो रसायन प्राप्त किए हैं उनमे एक प्रमुख रसायन है–ब्रोमीन। ब्रोमीन का उपयोग दवाओं, रंगों फटोग्राफी के रसायनों, कीटनाशकों तथा अग्निशमकों में होता है।

बिटर्न से 34.5° बॉमे पर मैग्नीशियम सल्फेट (एप्सम सॉल्ट) प्राप्त होता है। यह एक मृदु विरेचक औार एक मात्र जल रेचक है। आजकल इसका उपयोग कपड़ों की रंगाई और चर्म उद्योग में होता है।

नमक का उपयोग आहार, औषधापचार और उधोगों में होता है। मानव और पशुधन के पोषण तथा शारीरिक क्रिया के लिए भी नमक बहुत आवश्यक होता है।

नमक की खपत देश की औधोगिक प्रगति का मेरूदंड भी कही जा सकती है। नमक का सबसे अधिक उपयोग क्षार बनाने वाले कारखानों मे कच्चे माल के रूप में होता है। धोने का सोडा, फॉस्टिक सोडा, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल, क्लोरीन आदि कई रसायनों के निर्माण का आधारभूत पदार्थ भी नमक ही है। चमड़ा पकाने, कपड़ों की रंगाई व छपाई, कागज निर्माण आदि अनेकानेक उधोगों में नमक का बहुतायत से उपयोग होता है।

आयोडीन युक्त नमक जरूरी

मानव शरीर में आयोडीन एक सूक्ष्मत्रिक तत्व है जिससे मूलतः अवटुग्रंथि या थाईरॉइड की क्रिया [illegible] होती है। यदि मानव को प्रतिदिन के भोजन में पर्याप्त आयोडीन नहीं मिलती है तो उसकी

की कमी से मंद बुद्वि होने की संभावना बनी रहती है। आयोडीन की कमी से जनन क्षमता में मंदता का प्रभाव और बौनापन निर्विवाद नहीं है। आयोडीन की आवश्यकता हमारे गले में सामने की ओर श्वास नली में ऊपर स्थित थायरॉइड नामक ग्रंथि में थायरॉइड हरमोन बनाने के लिए होती है। हारमोन की पर्याप्त उपलब्धता पर हमारे शरीर का शारीरिक एवं मानसिक विकास निर्भर करता हैं। इस हारमोन की कमी से शरीर में कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं जिनका प्रभाव हमारी भावी संतति पर भी हो सकता है। थायरॉक्सिन की कमी से केश, नाखून, त्वचा तथा दांत इत्यादि भी कमजोर हो जाते हैं। अत्यधिक दुष्प्रभाव के रूप में रक्त में कोलेस्ट्रॉल की वृद्वि और धमनी जन्य हृदय रोग भी हो सकते हैं।

उपर्युक्त विकारों से बचने तथा स्वस्थ शरीर के लिए यह आवश्यक है कि शरीर में आयोडीन की पर्याप्त मात्रा बनी रहे। आयोडीन को किसी अन्य खाघ पदार्थों से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। मानव शरीर के लिए जरूरी 90 प्रतिशत आयोडीन की पूर्ति भोजन तथा जल से होती है। यह प्रेक्षित किया गया है कि यदि नमक में उचित मात्रा में आयोडीन मिला दी जाए तो हर व्यक्ति को आवश्यतानुसार आयोडीन स्वतः ही मिल सकती है।

नमक में शरीर में उपस्थित तरल द्रव्य के स्तर को संतुलित रखने की अभूतपूर्व क्षमता होती है। क्योंकि तरल द्रव्य का आयतन सीधा उसमें मिश्रित नमक की मात्रा पर निर्भर करता है। चूंकि शरीर में नमक की मात्रा स्थिर रहती है, अतएव रक्त का आयतन तथा अन्य तरल तत्व भी स्वतः नियंत्रित होते रहते हैं। नमक के माध्यम से शरीर में आयेडीन पहुंचाकर आयोडीन की दैनिक मात्रा की पूर्ति संभव है। आयोडीन युक्त नमक तथा साधारण नमक देखने और खाने में समान गुण रखते है। अंतर मात्र यहीं है कि आयोडीन युक्त नमक में पोटैशियम आयोडेट के रूप में मिलायी गई थोड़ी सी आयोडीन हमारे शारीरिक एवं मानसिक विकास में सहायक होती है। आयोडीन की आवश्यक मात्रा को ग्रहण कर अनावश्यक आयोडीन को हमारा शरीर मूत्र के माध्यम से बाहर निकाल देता है।

आयोडीन की कमी को दूर करने का जो सबसे सुविधजनक सरल और सस्ता उपाय खोजा गया है, वह है–आयोडीन युक्त नमक का उपयोग। देश के कई सरकारी एवं निजी उत्पादक आयोडीन युक्त नमक का उत्पादन कर रहे हैं। इस दिशा में केंद्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसंधान संस्थान, भावनगर ने आयोडीकरण के लिए सरल विधि विकसित की है जिसमें खर्चीली मशीनरी की आवश्यकता नहीं होती है। इसी संस्थान ने नमक की शुद्वता, उसमें आयोडीन की मात्रा की शुद्वता तथा आयोडीन की मात्रा की जांच के लिए अनेक प्रकार के किट भी विकसित किए हैं।

रक्त में नमक की कमी व अधिकता से रोग

नमक की न्यूनता तथा अधिकता दोनों ही शरीर के लिए रोगकारक होती है। हमारे रक्त में जब

रक्त में सोडियम का अधिक स्तर यानी 145 मिलीमोल प्रतिलीटर से अधिक होने पर कोशिकाओं का जल बाहर निकलने लगता है, जिससे वे सिकुड़ने लगती है। रोगी के हाथ–पैर सुन्न हो जाते हैं तथा मानसिक क्षमता कम होने लगती है। कई बार पसीना अधिक आने पर पसीने में सोडियम कम हो जाता है। यह अवस्था "हाइपरनेट्रिमिया" कहलाती है।

सोडियम शरीर के लिए अति आवश्यक तत्व है। इसके शरीर में कम या अधिक होने के गंभार परिणाम होते है। नमक की कम मात्रा सेवन करने से रक्तचाप कम हो सकता है। तथा अन्य समस्याएं भी हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में नमक की मात्रा थोड़ी बढ़ाने से रक्तचाप सामान्य हो जाता है। इसी प्रकार उच्च रक्तचात के रोगियों को कम मात्रा में नमक का सेवन करना चाहिए। गरमी के मौसम में जिन व्यक्तियों को अत्यधिक पसीना आता है अथवा खेलने वाले व्यक्तियों को नमक कुछ अधिक मात्रा में लेने से सोडियम की कमी से बचा जा सकता है।

बहुरत्न वसुन्धरा

भोलादत्त मौनी

छीड़ापानी शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय केन्द्र
चम्पावत (उत्तराखण्ड)

हम जिस धरा पर रह रहे हैं, यही धरा रत्नों से परिपूर्ण है, विज्ञान द्वारा अभीतक खोजी गई सबसे छोटी इकाई परमाणु से लेकर विशाल पर्वत श्रृंखलायें, विशाल हिम खण्ड, मिट्टी से भरे बड़े–बड़े मैदान रेत से भरा मरूस्थल और अथाह जल से भरा रत्नाकर भी इसी धरा पर स्थित है, अमृत और हलाहल विष भी इसी धरा पर है, आधुनिक विज्ञान द्वारा जिन बहुमूल्य तत्वों की खोज किये जाने से आज मानव जिस विलास पूर्ण जीवन को जी रहा है वह तत्व भी इसी धरा की देन है जिस प्राकृतिक गैस व तेल से आज यह संसार चलायमान है वह अमूल्य तेल गैस भी इसी धरा पर है। इसी धरा पर दानी दान करते हैं, भोगी भोग करते हैं, लुटेरे लूट–पाट करते हैं, हिग्ंस वोसोन कण की खोज हो चुकी है। जीवन को देने वाले जल, वायु और जमीन भी इसी धरा की देन है, संजीवनी भी यहीं है। इस धरा से अन्यत्र जीवन की खोज के लिए आतुर वैज्ञानिक (ऋषि) नित नये अनुसंधान कर रहे हैं पर आज तक नहीं खोज पाये हैं। जीवन भी इसी धरा पर है और अन्त भी इसी धरा पर है।

अतः हे बहुरत्न वसुन्धरे तुम्हें ही आरम्भ से लेकर अन्त तक शत–शत नमन।

असेला बर्फानी ट्राउट (साइजोथोरेक्स रिचर्डसोनी), जैव वैज्ञानिक संरचना एवं पालन की सम्भावनायें

कृपाल दत्त जोशी

अध्यक्ष, क्षेत्रीय केन्द्र
केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
24, पन्ना लाल मार्ग, इलाहाबाद– 211 002 (उत्तर प्रदेश)

असेला बर्फानी ट्राउट, साइजोथोरेक्स रिचाईसोनी (ग्रें) भारतीय उपमहाद्वीप स्थित हिमालय क्षेत्र की एक प्रमुख मत्स्य प्रजाति है। यह मछली हिमालय क्षेत्र में जम्मू कश्मीर से असम, सिक्किम, भूटान, नेपाल, पाकिस्तान तथा अफगानिस्तान तक पायी जाती है। इसे भारतवर्ष के अलग–अलग क्षेत्रों में भिन्न नामों से जाना जाता है। उत्तरांचल में इसे असेला, असला, रसेला, जम्मू कश्मीर व हिमाचल प्रदेश में अलवन, जिस गुलगुली तथा उत्तर पूर्व में ट्राउट कहा जाता है। यह हिमालय क्षेत्र की वेगवान नदियों, छोटी नदियों तथा पर्वतीय सदाबहार जालों में पायी जाती है। यद्यपि यह अपेक्षा तथा विस्तृत तापमान सहन कर लेती है लेकिन असेला ट्राउट के लिए अनुकूल तापमान 15.0° से 24.0° से के बीच रहता है। क्योंकि इसी तापमान पर मछली की शारिरिक वृद्धि, प्रजनन आदि क्रियाऐं सम्पन्न होती है। उच्च तथा मध्य हिमालय क्षेत्र की कुछ नादियों में असेला ट्राउट की प्रतिशत उपलब्धता 23.81 से 98.03 प्रतिशत तक आंकी गयी है जबकि निम्न पर्वतीय क्षेत्र में प्रतिशत उपलब्धता कम हो जाती है। स्वादिष्ट तथा जायकेदार मांस के लिए असेला ट्राउट पूरे हिमालय क्षेत्र में विख्यात है तथा सिक्किम, भूटान एवं नेपाल में इसकी बहुत अधिक मांग है। कुछ क्षेत्रों में इसे विदेशी इन्द्रधनुषी ट्राउट से भी अधिक पसन्द किया जाता है। यद्यपि पर्वतीय क्षेत्रों में संगठित मत्स्य तथा मत्स्य बाजारों का अभाव है फिर भी यह मछली स्थानीय उपभोक्ताओं तक पहुँचती है।

असेला ट्राउट का आकार

यह मछली आकार में लम्बी तथा व अर्ध बेलनाकार होती है। इसका निचला होंठ चपटा होता है जिसके छोटे–छोटे दाने सदृश संरचानाऐं (पैपिली) बनी रहती है जो एक चूषक (सकर) का रूप लिये होती हैं। यह

आवास

असेला ट्राउट हिमालय क्षेत्र में 272–2000 मी. तक ऊंचाई छोटी नदियों तथा सदावहार नालों में मिलती है। यह ग्लेशियर निर्मित नदियों तथा छोटे नालों से तक की बनी हुयी नदियों में मिलती है। यह पर्वतीय झीलों व जलाशयों में भी पायी जाती है। हिमालय क्षेत्र में स्थित उपरोक्त जल स्रोतों में 4.1°–28.9° से0 तापमान के बीच इसकी उपलब्धता पायी गयी है। यह मछली नेपाल की नदियों में समुद्र तल से 1380 से 2180 मी. ऊंचाई तक में पायी जाती है।

प्राकृतिक आहार एवं प्रतिपूरक आहार

यह मछली जलीय संसाधनों के तल पर रहती है तथा तल भोजी प्रकृति की हैं। यह शाकाहारी तथा तल पर एकत्रित कार्बनिक पदार्थों (डेटाइटस) चट्टानों, पत्थरों तथा नदी व जालों के किनारे स्थित ठोस वस्तुओं पर एकत्रित जैविक आवरण पर भोजन करती है, जिसमें मुख्यता विभिन्न लवक होते है। लेकिन मछली के (फाई) तल पर उपलब्ध क्रस्टेशियन तथा कीटों के लाखों का भक्षण करते है। असेला ट्राउट तालाब में पालने पर प्रतिपूरक अथवा कृत्रिम आहार भी ग्रहण करती है। लेखक द्वारा किये गये अनेक प्रयोगों के दौरान अकेला ट्राउट को कृत्रिम आहार दिया गया जो इसके कुल भार के 1–5 प्रतिशत तक था। कृत्रिम भोजन में 38.0 सोयाबीन आटा, 20.0 प्रतिशत मछली चूर्ण तथा 2.0 प्रतिशत विटामिन व खनिज चूर्ण दिया गया। इस कृत्रिम आहार में प्रोटीन की उपलब्धता 32 प्रतिशत रखी गयी थी। प्रजनन के पश्चात् प्रस्फुटन के 84.168 घंटों के बाद जब दोनों का परित कोण समाप्ति पर होता है ये कृत्रिम आहार ग्रहण करना प्रारम्भ कर देते है।

नर व मादा मछली में लिंग विभेदन (लैंगिक विभेदन)

इस मछली की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें प्रौढ़ नर तथा मादा मछली में लिंग विभोद वर्ष पर्यन्त किया जा सकता हैए अन्यथा अधिकतर मछलियों में नर तथा मादा की पहचान प्रजनन काल में अथवा मछलियों का विच्छेदन करने पर ही की जा सकती है। इसमें मादा मछली के पृष्ठ कांटा (डौरसल स्पाइन) होता है तथा पुच्छ पक्ष पर को निचली सिरा अधिक लम्बा होता है। इसके अतिरिक्त मछली का शरीर श्लेश्मा युक्त तथा अग्र भाग (स्नाइट) सामान्य होता है, जबकि नर मछली में पृष्ठ कांटा पतला व कमजोर व पुच्छ पक्ष के दोनों सिरे असमान होते है। शरीर अपेक्षाकृत घुरदुरा होता है तथा अग्र भाग में (स्नाइट) छिद्र द्वारा होता है प्रजनन काल में यह लक्षण और अधिक दिखायी देते है।

वृद्धि दर

वजन 72.0 ग्राम तक ही बड पायी, जबकि नदीय वातावरण में इसकी वृद्धि 1 से 5 वर्ष तक वृद्धि 10.22 सेमी, 20.47 सेमी, 20.62 सेमी 39.14 सेमी तथा 47.00 सेमी0 आंकी गयी है।

प्रजनन

नर असेला ट्राउट में लैंगिक परिपक्वता 2 वर्ष की आयु के पश्चात् तथा मादा में तीन वर्ष की उम्र के पश्चात् आती है। इस प्रजाति की मछलियों में प्रजनन वर्ष में दो बार देखा गया है। कम ऊंचाई में स्थित (समुद्रतल से 1000 मी. से कम) स्थित नदियों एवं नालों में प्रजनन अप्रैल–मई तथा ऊँचाई वाले समुद्र तल से 1000मी से 305 जल स्रोतो में में सितम्बर–अक्टूबर में होता है। यह मछली प्रजनन काल में नदियों के निचले भागों से पर्वतीय भागों की ओर यवासन करती है तथा अनुकूल क्षेत्र मिलने पर प्रजनन करती है। नदियों अथवा नालों के किनारे छिछले भागों में जहां तलीय संरचना बालू व छोटे–छोटे ककड़ों युक्त होती हैं यह अण्डे देती है। असेला के प्रजनन के लिए 20.0–22.5° से जलीय तापमान तथा 8 से 9.2 किग्रा प्रति ली0 घुलित आक्सीजन उपयुक्त होते है। इस मछली में कृत्रिम प्रजनन भी किया जा सकता है।

विभिन्न अध्ययनों द्वारा देखा गया है कि यह मछली परिपक्व अवस्था में समस्त अण्डे एक साथ मुक्त करती है। असेला ट्राउट में प्रति किग्रा मछली से अनुमान व 11,666 से 17,284 अण्डे प्राप्त होते है।

प्रवासन

असेला बर्फानी ट्राउट पर्वतीय क्षेत्र की एक प्रमुख प्रवासी प्रजाति भी है। यह मछली अनुकूल तापमान पसन्दीदा भोजन तथा उचित प्रजनन योग्य क्षेत्रों की तलाश में नदियों में आवागमन करती है, यू तो मछली वर्ष भर अपना अधिकतम समय नदियों व नालों के मध्य तथा ऊपरी भागों में व्यतीत करती है, लेकिन शीतकाल के प्रारम्भ होते ही यह ऊपरी भागों से मध्य भाग तथा फिर निचले भागों कमी ओर प्रवासन करती है। ज्योंही ऊपरी भागों में नवम्बर–दिसम्बर के जलीय तापमान लगभग 13° से कम होने लगता है, यह उच्य पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित नदियों व नालों से निचले भागों की ओर जाने लगती है। नदियों अथवा नालों के मध्य अथवा निचले भागों में जलीय तापमान उच्च भागों से अधिक रहता है तथा यह तापमान मछली के शारीरिक क्रियाओं के लिए अधिक उपयुक्त रहता है। इस प्रकार उच्य पर्वतीय क्षेत्रों में बहने वाली नदियों तथा नालों से इस प्रजाति की मछलिया नदियों के मध्य तथा फिर निचली घाटियों या मैदानी क्षेत्र तक आती है। जो अक्टूबर–नवम्बर से फरवरी–मार्च तक रहता है। इस अवधि में मछली के छोटे बच्चे तथा कुछ वयस्क जो नदियों के निचले अपेक्षाकृत गर्म भागों की ओर नहीं आ पाते है नदियों तथा नालों के बीच स्थित गहरे तालाबों की तलहटी में आश्रय लेते है तथा शारीरिक क्रियाओं को न्यूनतम स्तर तक रखते है, नदियों के तापमान 3° से अधिक बढ़ने लगता है.

में स्थित मध्य तथा ऊपरी भागों की ओर प्रवासन करते हैं। इस अवधि में अनेक मछलियां परिपक्व अवस्था में रहती हैं जो मध्य भागों स्थित अनुकूल प्रजनन क्षेत्रों के मिलने पर प्रजनन क्रिया करते हैं।

ग्रीष्मकाल में अहम तथा अन्य पर्वतीय क्षेत्र में स्थित छोटी नदियों एवं नालों में जल बहाव बहुत कम हो जाता है। यह स्थिति उन जल श्रोतों में होती है जिनके श्रोत वर्षा जल तथा शैल छिद्रों से बहकर आने वाल जल पर निर्भर होते है, पानी की कमी के कारण इन जल श्रोंतो में निचले भागों से आने वाली असेला प्रवेश नहीं करती है। वह केवल मध्य पर्वतीय क्षेत्रा में बहने वालीं अपेक्षाकृत पर्याप्त जलराशि युक्त नदियों व नालों में अपना समय व्यतीत करती है।

तत्पश्चात् वर्षा ऋतु में उच्च हिमालयी पर्वतीय क्षेत्रों में स्थित समस्त नदियां व नाले पर्याप्त राशि समुक्त हो जाते है लेकिन वर्षा ऋतु के इन जल श्रोतों ककंड़ पत्थरों भरपूर अत्यधिक वेगवान होने के कारण यह मछली इनमे प्रवेश नहीं करती है, लेकिन वर्शा ऋतु की समाप्ति पर अगस्त–सितम्बर में जब यह जल श्रोत कमोवेश स्थिर एवं अनुकूल हो जाते है असेला ट्राउट इनमें प्रवेश करती है तथा उचित स्थानों पर प्रजनन करती है ।

लैंगिग परिपक्वता

अन्य प्रमुख पर्वतीय प्रजातियों की तरह मादा असेला ट्राउट तीन वर्ष की आयु के पश्चात् लैंगिग रूप से परिपक्क्ता ग्रहण करती है जबकि नर मछली दो वर्ष की आयु में परिपक्व अवस्था में आ जाता है।

पालन योग्य गुण

असेला ट्राइट मछली अनेक विशेषताओं से युक्त है जिसके अन्तर्गत कुछ पालन योग्य गुण भी मौजूद है

1. अन्य पर्ततीय प्रजातियों की अपेक्षा यह मछली विस्तृत तापमान में रह सकती है। यह न्यूनतम 4.5^0 से तथा अधिकतम 28.9 से तापमान में पायी जाती है।
2. यह बहते हुए तथा कुछ कम बहाव वाले पानी में आसानी से रह सकती है।
3. जलीय प्राकृतिक आहार के अतिरिक्त–प्रतिपूरक आहार भी ग्रहण कर लेती है।
4. शाकाहारी प्रकृति की है अतः निम्न पोषी तल में रहती है।
5. इस मछली का बीज प्राकृतिक जल श्रोतों में पर्याप्त मात्रा के उपलब्ध रहता है।
6. कृत्रिम प्रजनन भी सुगमता से किया जा सकता है तथा बीज उत्पादन किया जा सकता है।

"मेरा एक सवाल"

हयात सिंह चौहान

शीतजल मात्स्यिकी अनुसंधान निदेशालय
भीमताल, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

पहाड़ो की मछली हूँ मैं
देखने में सुन्दर और स्वाद में बेमिसाल
जलीय पर्यावरण की मैं करती हूँ देखभाल
तुच्छ सूक्ष्म प्राणी हूँ फिर भी कर सकती हूँ कमाल
लेकिन हे मानव! आज पूछती हूँ एक सवाल

बहुत दुःखी हूँ मैं
पहाड़ो की मछली हूँ मैं
आप विश्व पर्यावरण दिवस मना रहे हैं
बड़े–बड़े भाषण और योजनाएं बना रहे हैं
लगता है चन्द दिनों में आप दुनिया ही बदल देंगे
ग्लोबल वार्मिंग के नाम पर चमत्कार ही कर देंगे

इस सब की सच्चाई जानती हूँ मैं
पहाड़ो की मछली हूँ मैं
कल शाम पानी में हुआ था एक धमाका,
मेरा सारा कुनबा मर गया जोर से फटा था वह पटाका

सोचा था महीने बाद हम सब मिलकर प्रजनन करेंगें
अपने नन्हें मुन्नों को निहारेगें और दुलार करेंगे
जलीय पारिस्थितिकी सन्तुलन में अपना योगदान करेंगें
बड़े होकर किसी के भोजन का निवाला बनेंगे
बस अब तो अकेली ही बची हूँ मैं
पहाड़ो की मछली हूँ मैं

मन करता है कहीं भाग जाऊँ या कर लूँ आत्महत्या
अब कितने दिनों में बन पायेगी हमारी उतनी ही संख्या
कब तक विनाश की लीला खेलते रहेंगे आप
विनाश के परिणाम का आपको तनिक भी नहीं है पश्चाताप
आज आप से यहीं सवाल पूछ रही हूँ मैं
पहाड़ों की मछली हूँ मैं